श्रीः

खूनी औरत

का

सात खून ।

जासूसी उपन्यास ।

लेखक—

श्रीयुत किशोरीलालगोस्वामी ।

" यन्मनोरथशतैरगोचरं,
न स्पृशन्ति च गिरः कवेरपि ।
स्वप्नवृत्तिरपि यत्र दुर्लभा,
लीलयैव विदधाति तद्विधिः ॥ "
(सुभाषितम्)

श्रीयुत छबीलेलालगोस्वामी के आज्ञानुसार
" श्रीसुदर्शनप्रेस "—वृन्दावन से
छपकर प्रकाशित ।

संवत् १९७५ | प्रथमबार, १००० | सन् १९१८

Printed and published by C. L. Goswami,
Shri Sudarshan Press, Brindaban.

श्रीः

खूनी औरत
का
सात खून।

जासूसी उपन्यास !

पहिला परिच्छेद।

घोर विपत्ति !

" आकाशमुत्पततु गच्छतु वा दिगन्त—
मम्भोनिधिं विशतु तिष्ठतु वा यथेच्छम् ॥
जन्मान्तरार्जितशुभाशुभकृन्नराणां,
छायेव न त्यजति कर्मफलानुबन्धः ॥ "
(नीतिमञ्जरी)

दुलारी मेरा नाम है और सात सात खून करने के अपराध में इस समय मैं जेलखाने में पड़ी पड़ी सड़ रही हूं। मैं जाति की ब्राह्मणी हूं, पर कौनसी ब्राह्मणी हूँ, यह बात अब नहीं कहूंगी। मैं अभी तक कुमारी हूँ और इस समय मेरा बयस सोलह बरस के लगभग है।

कानपुर जिले के एक छोटेसे गांव में मेरे माता-पिता रहते थे, पर किस गांव में वे रहते थे, इसे अब मैं नहीं बतलाना चाहती; क्योंकि जिस अवस्था में मैं हूँ, उस दशा में अपने बैकुण्ठबासी माता-पिता का पवित्र नाम प्रगट करना ठीक नहीं समझती।

साढ़े तीन महीने से मैं जेल में पड़ी हूं। जिस समय मैं अपने गांव से चलकर एक दूसरे गांव के थाने पर गई थी, वह अगहन का उतरता महीना था, और अब यह फागुन मास बीत रहा है।

मेरा नाम इस समय कई तरह से प्रसिद्ध हो रहा है। कोई मुझे "खूनी औरत" कह रहा है, कोई "सात खून" पुकार रहा है, कोई "रणचण्डी" बोल रहा है और कोई "चामुण्डा" बतला रहा है! बस, इसी तरह के मेरे अनेकों नाम अदालत और जेलखाने के लोगों की जीभों पर नाच रहे हैं और इन्हीं नामों से मैं प्रायः पुकारी भी जाने लगी हूं।

यह सब तो है; पर ऐसा क्यों हुआ और सात सात खून करने का अपराध मुझे क्यों लगाया गया, यही बात मैं यहां पर कहूंगी।

मैं अपने गांव से चल कर दूसरे जिस गावं के थाने पर खून की रिपोर्ट लिखाने गई थी, उसी गावं पर एक अङ्गरेज अफ़सर के सामने मेरा बयान कानपुर के कोतवाल साहब ने लिखा था। फिर वहांसे मैं पुलिस के पहरे में कानपुर लाई गई और कोतवाली की कालकोठरी में रक्खी गई। फिर कई दिनों के बाद जब मजिष्टर साहब के सामने मेरा बयान होगया, तब मैं जेलखाने भेज दी गई और कुछ दिनों पीछे दौरे सुपुर्द की गई। कई पेशियां दौरे में भी हुईं और महीनों तक मुकद्दमा चलता रहा। अन्त में मुझे फांसी की आज्ञा सुनाई गई और मैं जेलखाने की कालकोठरी में पड़ी पड़ी सड़ने लगी; पर यह बात मुझे स्मरण न रही कि किस दिन मुझे फांसी पर लटकना होगा। उस दण्डाज्ञा के होने के दस पन्द्रह दिन पीछे मैंने एक दिन जेलर साहब से यों पूछा कि,—"मुझे किस दिन फांसी होगी?" इस पर हंस कर उन्होंने यह जवाब दिया कि,—"अभी उसमें देर है; फांसी की तारीख पदली गई है, पर तुम्हारे किसी मददगार बैरिस्टर ने जजसाहब के फैसले के विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील दायर की है; इसलिये अब, जबतक

हाईकोर्ट का आखीर फैसला न हो लेगा, तब तक फांसी नहीं दी जायगी।"

जेलर साहब की यह बात सुन कर मैं बहुत ही चकित हुई और उनसे यों कहने लगी कि,—"क्यों साहब, मैंने तो अबतक किसी भी वकील-बारिष्टर को अपने मुकद्दमें की पैरवी के लिये नहीं खड़ा किया था और अदालत के कहने पर भी वैसा कोई प्रबन्ध नही किया था; वैसी अवस्था में फिर मेरी ओर से किस बारिष्टर ने हाईकोर्ट में अपील दायर की है?"

यह सुन कर जेलर साहबने कहा,—"जिस बैरिष्टरने तुम्हारी तरफ से अपील दायर की है, वह आज दोपहर को तुमसे खुद आकर मिलेगा। बस, उसी की जबानी तुमको सारी बातें मालूम होजायंगी।"

यों कहकर जेलर साहब एक ओर चले गए और मैं मन ही मन यों सोचने लगी कि,—"अरे, मुझ अभागिन के लिये परमेश्वर ने किसे खड़ा किया, जो मेरे लिए आप ही आप उठ खड़ा हुआ!!! मजिष्ट्रर साहब के सामने जब मैं पहुंचाई गई थी, तब मैंने यह देखा था कि सैंकड़ों वकील-मुख्तार मेरे मुकद्दमे का तमाशा तो खड़े देख रहे थे, पर मेरे लिये किसी माई के लाल ने भी दो बोल नहीं कहे। यहांतक कि हाकिम ने मुझसे यों कहा था कि,—"यदि तू चाहे तो अपने पक्षसमर्थन कराने के लिये किसी वकील-मुख्तार को अपनी ओर से खड़ा कर ले।" परन्तु मैंने यों कहकर इस बात को अस्वीकार किया था कि,—"नहीं, इसकी कोई आवश्यकता नहीं है; क्यों कि मुझे झूठ नहीं बोलना है; और जो कुछ सच्ची बात है, उसे मैंने कही दिया है; ऐसी अवस्था में फिर मुझे वकील मुख्तारों की कोई आवश्यकता नहीं है।"

यही बात जजी में भी हुई थी, अर्थात् वहां पर भी सैंकड़ों वकील बारिष्टर मेरे मुकद्दमे का तमाशा तो देख रहे थे, पर मेरे लिये

समर्थन के लिये कोई भी ओर आगे नहीं बढ़ा था। ऐसी सब रंग ढंग देखकर अदालत के कहने पर भी फिर मैंने किसी वकील या बैरिष्टर को अपनी ओर से नहीं खड़ा किया था। इसमें एक बात और भी थी और वह यह थी कि मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी न थी, फिर वैसी अवस्था में वकील-बारिष्टर क्यों कर किए जाते।

अस्तु, इसी तरह की बातें मैं देर तक सोचती रही, इतने में एक कान्स्टेबिल मुझे नित्य की भांति दूध देगया, जिसे पीकर मैंने सन्तोष किया। उसी समय घड़ी ने दोपहर के बारह बजाए।

जिस तरह की कोठरी में मैं बन्द की गई थी, वह इतनी छोटी थी कि उसकी छत खड़े होने से मांथे में लगती थी और उसमें हाथ-पावं फैला कर सोना कठिन था। उसके तीन ओर पक्की दीवार थी और चौथी ओर लोहे का मजबूत दरवाजा था, जिसमें तीन तीन इञ्च की दूरी पर मोटे मोटे लोहे के छड़ लगे हुए थे। मुझे जेलखाने के ढंग का एक मोटा और जनाना कपड़ा दिया गया था, जिसे मैं पहिरे हुई थी।

जेलर साहब एक बङ्गाली थे, उनका बयस पचास के पार था और वे मेरे साथ बड़ी भलमंसी का बरताव करते थे। जेल के और सिपाही भी सहूलियत से ही पेश आते थे।

मुझे कोई कष्ट न था और मैं बड़े धीरज के साथ अपना दिन बिताती थी। मुझे फांसी की टिकटी पर चढ़ने या मरने का तनिक भी डर न था, क्योंकि इस शोचनीय दशा को पहुंचकर मैं अब जीना नहीं चाहती थी; पर जब जेलर साहब की बात पर मेरा ध्यान जाता तो मैं बहुत ही आश्चर्य करने लगती कि अरे, मुझ अभागिन के लिये नारायण ने किस दयावान को खड़ा किया है!

दूसरा परिच्छेद ।

आशा का अङ्कुर ।

" अनुकूले सति धातरि,
भवत्यनिष्टादपीष्टमविलम्बम् ॥
पीत्वा विषमपि शम्भु-
र्मृत्युञ्जयतामवाप तत्कालम् ॥"
(नीतिरत्नावली)

अस्तु, जब मैं दूध पी चुकी, तो मैंने क्या देखा कि जेलर साहब दो भले आदमियों के साथ मेरी कोठरी की ओर आ रहे हैं और उनके पीछे पीछे एक आदमी दो कुर्सियां लिए हुए चला आ रहा है। मेरी कोठरी के आगे दालान में वे दोनों कुर्सियां डाल दी गई और जेलर साहब ने मेरी ओर देख कर यों कहा,—"दुलारी, इन दोनों भले आदमियों में से जो काला चोगा पहिरे और बड़ा सा टोप लगाए हुए हैं, ये ही तुम्हारे बारिस्टर हैं और जो सादी पोशाक पहिरे और मुरेठा बांधे हुए हैं, ये सरकारी जासूस हैं। ये लोग जो कुछ तुमसे पूछें, उसका तुम मुनासिब जवाब देना। अभी बारह बजे हैं, और ये दोनों साहब पांच बजे तक, अर्थात् पांच घंटे तक यहां ठहर सकेंगे। बस, जब ये लोग जाने लगेंगे, तब यही आदमी, जो कुर्सियां लाया है, मुझे इत्तला कर देगा और तब मैं आकर इन दोनो साहबों को जेल से बाहर कर दूंगा।"

बस, इतना मुझसे कह कर जेलर साहब ने उस आदमी की ओर देख कर यों कहा,—"रतन, तुम यहीं ठहरना और जब ये दोनों साहब जाने लगें तो मुझे तुरन्त खबर करना।"

यों कह कर जेलर साहब तो वहांसे चले गए, पर उनका आदमी रतन मेरी कोठरी के आगेवाले बरामदे में बंदूक कन्धे पर धर कर टहलने लगा। वे दोनों भले आदमी, अर्थात् बैरिस्टर साहब और जासूस साहब एक एक कुर्सी पर बैठ गए और मैं

अपनी कोठरी में जंगले के पास खड़ी रही।

मेरे साथ उन दोनों आदमियों की क्या क्या बातें हुईं, उनके लिखने के पहिले मैं उन दोनों साहबों की सूरत शकल का कुछ थोड़ा सा बयान यहां पर किये देती हूं।

काले रंग का चोगा पहिरे और अङ्गरेजी टोप लगाए हुए जो बारिस्टर साहब थे, वे मेरे अन्दाज से चौबीस-पचीस बरस से ज़ादे उम्र के कभी न होंगे। वे दुबले-पतले, खूब गोरे और लम्बे कद के बड़े सुन्दर जवान थे और अभी तक उन्हें अच्छी तरह मूछें नहीं आई थीं। और वे जो दूसरे जासूस साहब थे, वे खूब मोटे, कुछ नाटे कद के, सांवले रंग के और साठ बरस के बूढ़े पञ्जाबी मालूम होते थे। उनकी कानों पर खिंची हुई डाढ़ी और मूछों के बाल बिलकुल सफ़ेद होगए थे और उनके मुखड़े के देखने से मन में उनके ऊपर बड़ी श्रद्धा होने लगती थी।

जब कहने ही बैठी हूं, तब कोई भी बात मैं न छिपाऊंगी और अपनी जीवनी की सारी बातें खोलकर लिख डालूंगी; इससे इसके पढ़नेवाले चाहे मुझे किसी दृष्टि से देखें, पर मैं अपनी जीवनी की किसी बात को भी नहीं छिपाऊंगी। तो मेरे इस कहने का क्या अभिप्राय है ? यही कि भाई दयालसिंहजी को देखकर मेरे मन में उनपर जैसी श्रद्धा हुई थी, वैसी ही बारिष्टर साहब को देखकर उनपर भक्ति भी हुई थी। वह भक्ति बड़ी पवित्र, बड़ी पक्की और बड़ी ही हृदयग्राहिणी थी। पर मुझे देखकर उनके मन में कैसे भाव का उदय हुआ था, इसे तो उस समय वे ही जान सकते थे। वे रह रह कर मुझे सिर से पैर तक निरखते, भरपूर नज़र गड़ाकर मेरी ओर देखते और मुहं फेर फेर कर इस तरह ठंढी ठंढी सांसें भरने लगते थे कि उसे मैं भली भांति समझ सकती थी। अस्तु, अब उन बातों को अभी रहने देती हूं।

तीसरा परिच्छेद।

अयाचित बन्धु।

" उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च यास्तिष्ठति स बान्धवः॥"
(चाणक्यः)

अस्तु, अब यह सुनिए कि कुर्सियों पर बैठ जाने पर उन नौजवान बैरिष्टर साहब ने मुझे सिर से पैर तक फिर अच्छी तरह निरख कर यों कहा,—" दुलारी तुम्हारा ही नाम है?"

मैंने धीरे से कहा,—" जी हां।"

वे बोले,—" अच्छा तो, और कुछ पूछने के पहिले मैं अपना और अपने साथी का कुछ थोड़ासा परिचय तुम्हें देदेना उचित समझता हूं। यद्यपि हमलोगों का कुछ थोड़ासा परिचय जेलर साहब तुमको दे भी गए हैं, पर तौभी मैं अपने ढंग पर अपना और अपने साथी का कुछ परिचय देदेना ठीक समझता हूं। सुनो, ये मेरे साथी सरकारी जासूस हैं। ये जब बीस बरस के थे, तभी सरकारी जासूसी मोहकमे में भर्ती हुए थे, जिस बात को आज चालीस बरस हुए। अर्थात मेरे साथी की उम्र इस समय साठ बरस की है और ये चालीस बरस तक सरकारी नौकरी करके बड़ी नेकनामी के साथ पेन्शन लेकर अब अपने घर रहते हैं। इनका नाम भाई दयालसिंहजी है, ये पंजाबी सिक्ख हैं और इन्हें सरकार ने 'रायबहादुर' की पदवी से भी सन्मानित किया है। इनके चार लड़के हैं, और वे चारों युक्तप्रदेश के भिन्न भिन्न जिलों में डिप्टी कलक्टरी के पद पर सुशोभित हैं। इनके सबसे छोटे लड़के भाई निहालसिंह से, जो आजकल प्रयाग के डिप्टी कलक्टर हैं, मेरी बड़ी गहरी दोस्ती है और उन्हीं की बड़ी कृपा और प्रेरणा से उनके ये बूढ़े पिता भाई दयालसिंहजी इस बुढ़ौती की उम्र में

भी अपने घर के सारे आराम को दूर रखकर इस जाड़े पाले में तुम्हारी भलाई के लिये यहां आए हैं। एक सप्ताह के लगभग हुआ होगा कि तुम्हारी विपत्ति का सारा हाल मुझे अपने मित्र भाई निहालसिंहजी डिपटी कलक्टर से मालूम हुआ और उन्होंने मुझे 'पायनियर' अखबार दिखलाया, जिसमें तुम्हारे मुकद्दमे का पूरा हाल लिखा हुआ था। उसी समय उन्होंने मुझे तुम्हारे बचाने के लिये बहुत कुछ कहा और अपने इन्हीं बूढ़े पिता को तार देकर प्रयाग बुलाया। बस, इनके आ जाने पर मैं यहां आया और तुम्हारे मुकद्दमे के कुल कागजात देखकर इन्हें तो यहीं छोड़ दिया और मैंने फिर इलाहाबाद वापस जाकर जज के फैसले के विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील दायर कर दी। इसके बाद मैं फिर यहां वापस आ गया और भाई दयालसिंहजी से मिला। तबतक इन्होंने भी अपनी मुनासिब कार्रवाई कर डाली,—अर्थात तुम्हारे मुकद्दमे के कुल कागजात भलीभांति देख डाले और जासूसी मोहकमे के बड़े अफसर से मिलकर उनसे इस बात की इजाजत लेली कि, "इस मुकद्दमे की जांच मैं फिर से करूं और जबतक मेरी जांच का अखीर न हो ले, तबतक मुजरिम को आराम से रक्खा जाय।" बस, जासूसी मोहकमे के बड़े अफ़सर ने इनके खातिरखाह इन्हें इस मुकद्दमे की जांच करने का परवाना देदिया और उसे पाकर ये अपनी कार्रवाई करने लगे। इतने ही में मैं यहां आगया और इनसे मिला। फिर मजिष्ट्रेट से इजाजत लेकर आज हम दोनों तुम्हारे पास आए हैं और इसलिये आए हैं कि तुम उन सातों खूनों के बारे में ठीक ठीक हाल हमलोगों के आगे बयान कर जाओ। बस, जब तुम्हारा बयान हमलोग सुन लेंगे, तब तुम्हारे मुकद्दमे में भरपूर कोशिश कर सकेंगे।"

मैं तो बारिस्टर साहब की इतनी लंबीचौड़ी वक्तता सुनकर सन्नाटे में आगई! मैंने मन ही मन यह सोचा कि जब ये मुझ जैसी

एक साधारण स्त्री के सामने एक ही सांस में बे रोक टोक इतना बक गए तो फिर अदालत के हाकिमों के सामने कितना और किस तेजी के साथ बोलते होंगे ! अस्तु, मैं मन ही मन यही सब बातें सोच सोच कर चकित होरही थी कि मुझे चुपकी देखकर उन बूढ़े जासूस महाशय ने मुझसे यों कहा,—

" दुलारी ! सुनो बेटी ! ये बारिस्टर साहब यद्यपि मेरे सबसे छोटे लड़के के दोस्त और उसीके हमउम्र भी हैं, परन्तु इनकी विद्या, बुद्धि और वाग्मिता बहुत ही बढ़ी चढ़ी है। यद्यपि अभी दो ही बरस हुए कि ये विलायत से बैरिस्टरी पासकर के यहां आकर इलाहाबाद हाईकोर्ट में अपना काम करने लगे हैं, पर इतने ही थोड़े दिनों में इन्होंने वे काम किए हैं कि जिनके कारण हाईकोर्ट के बड़े बड़े नामी वकील-बारिस्टरों में इनकी धाक सी बंध गई है, हाईकोर्ट के जजलोग भी इनका लोहा मान गए हैं और अबतक जिन जिन मुकद्दमों को इन्होंने हाथ में लिया, उन उन में ये पूरे पूरे कामयाब होचुके हैं। मेरे लड़के के बहुत आग्रह करने से, और साथ ही यह भी जानकर कि तुम इन्ही की जाति की लड़की हो, ये इस बात पर तुल गए हैं कि तुम्हें अपने भरसक जरूर ही फांसी से बचावेंगे। आगे जगदीश्वर ने जो कुछ तुम्हारे भाग्य में लिखा होगा, वही होगा ! अस्तु, अब तुमसे यही कहना है कि एक बेर तुम अपनी सारी कहानी हमलोगों के आगे कह जाओ। बस, उसके सुन लेने पर हमलोग अपनी राय कायम करेंगे और यदि तुम्हारे बचने की कुछ भी आशा की जायगी तो जीजान से परिश्रम करके तुम्हें बेदाग बचा लेने की कोशिश करेंगे। "

बूढ़े जासूस भाई दयालसिंहजी की मीठी बातें सुनकर उन पर मेरी बड़ी श्रद्धा हुई और मैंने उनकी ओर देखकर यों कहा,—

" महाशयजी, मुझसे जो कुछ आपलोग सुनना चाहते हैं, वे सारी

बातें तो मेरे बयान में आ ही चुकी हैं और उन्हें आपलोग देख भी चुके हैं; फिर अब उन बातों के अलावे नई बात मैं क्या कहूंगी, जिसे आपलोग सुनना चाहते हैं ? ”

उन्होंने कहा,—“ हां, यह सब ठीक है और तुम्हारे इज़हार की पूरी पूरी नकल भी मेरे पास मौजूद है; पर फिर भी एक बार हमलोग तुम्हारी कहानी तुम्हारे ही मुहं से सुनना चाहते हैं। यद्यपि जो इज़हार तुमने पुलिस अफ़सर और मजिष्ट्रेट के आगे दिए थे, बिलकुल वही बयान तुमने जज के आगे भी किया और इस ढंग से किया कि तुम्हारे उन तीनो बयानों में रत्ती भर भी फरक नहीं पड़ा है ! तो भी इस समय हमलोग तुम्हारा बयान फिर लिया चाहते हैं और यह देखा चाहते हैं कि अब, इस समय के तुम्हारे बयान के साथ तुम्हारे पहिले के बयान किए हुए वे तीनों बयान मिलते हैं, या उनमें और इस समय के बयान में कुछ फर्क पड़ता है। ”

यह सुनकर मैंने पूछा,—“ तो इतनी कोशिश आपलोग क्यों कर रहे हैं ? ”

उन्होंने कहा,—“ सिर्फ़ तुम्हारे बचाने के लिये। ”

मैंने पूछा,—“मेरे बचाने से आपलोगों को क्या लाभ होगा ?”

उन्होंने कहा,—“एक अमूल्य प्राण के बचाने से बढ़कर संसार में और कोई लाभ हई नहीं। ”

यह सुनकर मैंने यों कहा,—“ किन्तु मैं अपने इस तुच्छ और अधम प्राण के बचाने की कोई आवश्यकता नहीं समझती। ”

उन्होंने कहा,—“ तुम अभी निरी नादान लड़की हो, तभी ऐसा कह रही हो। सुनो, मनुष्य को चाहिए कि अपने प्राण के बचाने के लिये जहांतक होसके, पूरी पूरी कोशिश करे। यदि उपाय के रहते भी कोई अपने प्राण बचाने का यत्न न करेगा तो उसे निश्चय ही आत्महत्या करने का पाप लगेगा। ”

जरा सा मुस्कुराकर मैंने कहा,—"आपका कहना बिल्कुल ठीक है, पर मेरी समझ में तो यह आता है कि जिस अधम नारी को सात सात खून करने के अपराध लगाए गए, उसका संसार से उठ जाना ही ठीक है; क्योंकि मुझ जैसी घृणित स्त्री यदि जेल से छूटेगी भी, तो वह फिर संसार में कहां खड़ी होगी, किस तरह लोगों को अपना कालामुहं दिखलावेगी और किसकी सरन गहेगी ? आपलोगों को कदाचित यह बात मेरे इजहार के देखने से भलीभांति मालूम होगई होगी कि इस संसार में अब मेरा कोई नहीं है। मैं कुमारी हूं और सात सात खून करने के अपराध में जेल की कालकोठरी में पड़ी हुई भरपूर सांसत भोग रही हूँ। अब इस दशा को पहुंचकर भी, यदि मैं किसी भांति छूट जाऊं तो मेरे छूटने से संसार को क्या भलाई होगी और मुझ "खूनी औरत" को कौन अपनावेगा ? तब मेरी यह दशा होगी कि मैं समाज से दुर्दुराई जाकर इधर उधर की ठोकरें खाती हुई भीख मांगती डोलूंगी और न जाने कैसे कैसे घोर संकटों का सामना करूंगी। ऐसी अवस्था में उस घृणित जीवन से इस फांसी की तखती को मैं करोड़ गुना अच्छी समझती हूं। इसलिये आपलोगों से मैं हाथ जोड़ कर यह बिनती करती हूं कि आपलोग मुझे बचाकर और भी घोरातिघोर दुःखसागर में यों डुबाने का प्रयत्न न करें और मुझे सुख से मरने दें। आपलोगों ने जो निःस्वार्थ भाव से मेरे लिये इतना कुछ किया, इसी के लिये मैं हृदय से आप लोगों की कृतज्ञ हूं और असंख्य धन्यवाद आपलोगों को देती हूं।"

बस, इतना कहते कहते मैं फूट फूट कर रोने लगी और देर तक रोया की। फिर बारिस्टर साहब और जासूस साहब के बहुत कुछ समझाने पर मेरा चित्त कुछ शान्त हुआ और जासूस भाई दयालसिंहजी ने यों कहा,—'दुलारी, मैं समझता हूं कि तुम

बड़ा समझदार लड़का हो, इसलिये इन व्यर्थ की बातों को तुम अपने जी से दूर करो और अपना चित्त ठिकाने करके मेरे आगे अपनी कहानी ज़रा दुहरा डालो।"

इसपर मैं कुछ कहना ही चाहती थी कि इतने ही में जेलर साहब वहां आगए और उन्होंने जासूस साहब और बारिस्टर साहब की ओर देखकर यों कहा,—"क्यों, साहबो चार तो बज गए और अब सिर्फ़ एक घण्टा यहां पर आपलोग और ठहर सकते हैं, क्योंकि पांच बजे के बाद फिर यहां पर कोई भी नहीं रह सकता।"

यह सुन और अपने जेब में से एक कागज़ निकाल कर भाई दयालसिंहजी ने जेलर साहब के हाथ में दिया और कहा,—"लीजिए, इसे पढ़कर मुझे वापस कीजिए।"

यह सुन और उस कागज़ को अपने हाथ में ले तथा पढ़ने के बाद उसे लौटाकर जेलर साहब ने बड़ी नम्रता से भाई दयालसिंहजी से कहा,—"ओहो! तो अबतक इस हुक्मनामे को आपने मुझे दिखाया क्यों नहीं? ख़ैर, यह आपके बड़े साहब का हुक्मनामा है और इसपर मजिष्ट्रेट साहब की भी सिफ़ारिश है। बस, अब आप तनहा, या अपने किसी साथी के साथ जबतक चाहें, जेल के अन्दर रह सकते, और जब चाहें, तभी आकर कैदी से बातचीत कर सकते हैं।"

जेलरसाहब की बातें सुनकर मैं मनहीमन भाई दयालसिंह की ताकत का अन्दाजा लगाने लगी और उन्होंने जेलरसाहब से कहा,—"लेकिन फिर भी, अब इस समय हमलोग जाते हैं। कल हमलोग सुबह ग्यारह बजे आवेंगे और शामतक रहकर इस कैदी औरत (मेरी तरफ़ इशारा करके) का इजहार लिखेंगे।"

यों कहकर भाई दयालसिंहजी उठ खड़े हुए और उनके साथ ही साथ बारिस्टर साहब भी खड़े होगए। फिर वे दोनों

जेलर साहब के साथ चले गए, और जेलर का वह आदमी "रतन" उन कुर्सियों को उठाकर लेगया।

वे दोनों जब चले गए, तब मेरे मन में तरह तरह के खयाल उठने लगे, और मेरे सिर में ऐसे ऐसे चक्कर आने लगे कि मैं फिर बैठी न रह सकी और अपना माथा पकड़कर धर्ती में लेट गई। कबतक मैं उस हालत में रही, इसकी तो मुझे कुछ सुध नहीं रही, पर जब दीयाबले एक कांस्टेबिल ने आकर मुझे पुकारा तो मैं चैतन्य हुई। फिर वह कांस्टेबिल मुझे दूध देने लगा, पर उस समय मेरा जी इतना बेचैन होरहा था कि मुझसे वह भी न पीया गया। हां, मैंने थोड़ासा ठंढा पानी जरूर पी लिया और इसके बाद मैं धर्ती में पड़े हुए कम्बल पर पड़ रही। सारी रात मैंने बड़े बुरे बुरे सपने देखे और सबेरे जब मुझे एक कांस्टेबिल ने आकर खूब जगाया, तब कहीं मेरी नींद खुली।

सबेरे दो हथियार बंद कांटेबिल और चार कैदी औरतों के साथ जाकर मैं मामूली कामों से छुट्टी पा आई और फिर अपनी कोठरी में बैठी हुई जासूस और बारिस्टर की बातों पर गौर करने लगी। मैंने मन ही मन यों सोचा कि, 'वास्तव में जासूस भाई दयालसिंहजी बड़ी भारी ताकत रखते हैं और मेरे वे बारिष्टर साहब भी खूब ही बोलना जानते हैं। अतएव यह खूब सम्भव है कि ये दोनों जबरदस्त आदमी जब एक हुए हैं, तब अवश्य ही मुझे छुड़ा लेंगे; परन्तु फांसी या जेल से छुटकारा पाकर मैं क्या करूंगी, कहां जाऊंगी, किसके द्वार पर खड़ी होऊंगी और कौन मुझे अपनावेगा?

चौथा परिच्छेद ।

नई कोठरी ।

" नमस्यामो देवान् ननु हतविधेस्तेऽपि वशगा,
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः ।
फलं कर्मायत्तं यदि किममरैः किं च विधिना,
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥ "
(भर्तृहरिः)

बस, इसी तरह की बातें मैं मन ही मन सोच रही और रोरही थी कि इतने ही में जेलर साहब ने आकर मुझसे यों कहा,—"बेटी दुलारी, मुझे ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हारे खोटे दिन गए और भले दिन अब आया ही चाहते हैं। तुम पर जगदीश्वर की करुण दृष्टि पड़ी है और तुम्हारा दुर्भाग्य सौभाग्य से बदला चाहता है। मेरे इतना कहने का मतलब केवल यही है कि एक बड़े जबर्दस्त हाथ ने तुम्हें अपने साये तले लेलिया है, जिससे इस आफ़त से तुम्हारा बहुत जल्द छुटकारा होजाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। बात यह है कि भाई दयालसिंह बहुत पुराने और बड़े जबर्दस्त जासूस हैं और सरकार के यहां इनकी बातों का बड़ा आदर है। तब, जब कि यही दयालसिंह तुम्हें छुड़ाने के लिये उठ खड़े हुए हैं तो मैं निश्चय कह सकता हूं कि तुम्हारा छुटकारा जरूर ही होजायगा। और यदि ईश्वर ने ऐसा किया तो मैं सचमुच बहुत ही प्रसन्न होऊंगा। क्योंकि मैं भी बालबच्चे वाला हूं और यह बात जी से चाहता हूं कि किसी तरह तुम इस बला से बच जाओ।

मैं चुपचाप जेलर साहब की बातें सुनती रही, इतने में फिर वे यों कहने लगे,—" देखो, भाई दयालसिंह की बढ़ी चढ़ी ताकत का एक नया तमाशा तुम देखो। मुझे अभी मजिष्टर साहब का एक हुक्मनामा मिला है, जिसमें यों लिखा है कि, दुलारी कालकोठरी

से निकाली जाकर एक साफ़, अच्छी और बड़ी कोठरी में रक्खी जाय। उसे अब बेड़ी-हथकड़ी हर्गिज़ न पहनाई जाय और उसके बैठने के लिये कुर्सी या चौकी और सोने के लिये चारपाई दीजाय। उसके पहिरने ओढ़ने और खाने-पीने के बारे में भाई दयालसिंह जैसी राय दें, वैसा ही किया जाय। हां, उसकी कोठरी के जंगलेदार दरवाजे में ताला जरूर लगाया जाय और पहरे का भी काफ़ी इन्तजाम रहे; पर ऐसा कभी न होने पावे कि उस क़ैदी औरत को कुछ भी तकलीफ़ हो। अगर भाई दयालसिंह उस औरत के पहिरने-ओढ़ने या खाने-पीने के लिये कुछ दान के तौर पर दें, तो वह जरूर लेलिया जाय और भाईदयालसिंह और बारिस्टर दीनानाथ जब चाहें, तब उस क़ैदी औरत से मिल सकें, जितनी देर तक वे चाहें, उतनी देर तक वे उस औरत के पास बेरोक टोक रह सकें और उससे बातचीत कर सकें।' इत्यादि। लो, सुना तुमने? मजिष्टर साहब के हुक्म की बानगी देखी तुमने? अब यह सब देख-सुनकर तो यह बात तुम भलीभांति समझ गई होगी कि भाई दयालसिंह कोई मामूली आदमी नहीं हैं और वे बड़ी भारी ताक़त रखते हैं।"

जेलरसाहब यहां तक कह चुके थे कि इतने ही में वहां पर दो औरतें आगईं। उनकी ओर देखकर उन्होंने मेरी कालकोठरी का दरवाजा खोला और मुझसे यों कहा,—"दुलारी, ये दोनो भी क़ैदी औरतें हैं, लेकिन जात की हिन्दू अर्थात् कहारिनें हैं। आज से ये तुम्हारी टहल-चाकरी करेंगी, इसलिये इनके साथ तुम कुएं पर जाओ। ये दोनो तुम्हें अच्छी तरह नहला-धुला कर उस कोठरी में ले आवेंगी, जिसमें कि अबसे तुम्हें रहना होगा।"

यों कहकर जेलर साहब ने एक नई, मोटी और सफेद धोती उन दोनो औरतों में से एक के हाथ में देदी और मुझे उन दोनो के साथ बिदा करना चाहा। पर जरा मैं ठिठकी रही और जेलर

साहब से यों कहने लगी,—"हां, कई दिनों से, अर्थात उस दिन से जिस दिन कि मुझे फांसी की आज्ञा हुई थी, मैं नहाई नहीं हूं इसलिये मैं नहाना तो अवश्य चाहती हूं, पर मुझे अपनी टहल-चाकरी के लिये किसी टहलनी की आवश्यकता नहीं है। साथ ही इसके, मैं वह नई धोती भी अभी नहीं पहिरना चाहती, जिसे कि आपने अभी इस कहांरी को दिया है। इसलिये इस धोती को आप वापस लेलें। हां, नहाने के लिये मुझे अवश्य हुकुम देदें।"

यह सुनकर जेलरसाहब ने मेरे साथ बड़ी हुज्जत की, पर अब नई धोती पहिरने के लिये मैं जरा भी राजी न हुई, तो उस धोती को उन्होंने उस कहांरी से लेलिया और मुझे उन दोनों के साथ नहाने के लिये बिदा किया। यद्यपि मैं उन कहांरियों को भी अपने साथ नहीं लिया चाहती थी, पर मेरी यह बात नहीं मानी गई और मैं उन दोनों के साथ एक ओर चली। साथ साथ, पर जरा दूर दूर, बन्दूक लिए हुए दो कांस्टेबिल भी मेरे पीछे पीछे चले।

मुझे वे दोनों कहांरिने एक कुएं पर लेगई, जिसके बगल में एक जाफरी टट्टी की पर्देदार कोठरी बनी हुई थी। उसी कोठरी में लेजाकर उन दोनों ने मुझे खूब नहलाया; और जब मैं नहा चुकी तो मैंने वही कपड़ा फिर पहिर लिया, जो कैद होने पर मुझे पहिराया गया था। फिर वे दोनों मुझे जनाने किले की ओर वाली उस कोठरी के पास ले आईं, जो अब मेरे रहने के लिये ठीक की गई थी। मैंने उस कोठरी के पास आकर क्या देखा कि जेलर साहब वहां पर मौजूद हैं! मुझे देखकर जेलरसाहब ने उन दोनों औरतों और कांस्टेबिलों को तो वहांसे बिदा किया और मेरे साथ वे उस कोठरी के अन्दर घुसे। ओहो! उस कोठरी के अन्दर घुसते ही मैंने क्या देखा कि वह छः हाथ की लंबी-चौड़ी एक चौकोर कोठरी है और उसकी पाटन भी छः हाथ के लगभग

ऊंची है। उसमें केवल एक ही ओर लोहे का छड़दार मजबूत दर्वाजा था। उस कोठरी में एक तरफ एक तार वाली लोहे की चारपाई बिछी हुई थी और उसपर दो अच्छे विलायती कंबल रक्खे हुए थे। एक तरफ एक चौकी के ऊपर पानी की सुराही और गिलास रक्खा हुआ था और उसी चौकी पर कई तरह के फल, मिठाइयां और ताजी ताजी पूरियां भी रक्खी हुई थीं। एक तरफ़ दो कोरी धोतियां भी रक्खी हुई थीं। पलङ्ग के अलावे, मेरे बैठने के लिये एक छोटीसी चौकी भी वहां पर पड़ी हुई थी और कोठरी के बाहर तीन कुर्सियां रक्खी हुई थीं।

अरे, मेरे ऐसी 'खूनी औरत' के लिये, जिसे कि फांसी की सजा का हुक्म होचुका है, इतनी तैयारियां की गई हैं! क्या भाई दयालसिंह का इतना बड़ा रुतबा है कि वे एक फांसी पर चढ़ने वाली औरत के वास्ते इतना कुछ कर सकते हैं! अस्तु, बहुत देर तक मैं कुछ सोचने न पाई, क्योंकि जेलर साहब ने मुझसे यों कहा कि,—"दुलारी, तुम जल्दी खाने-पीने से छुट्टी पा लो, क्योंकि दस बज चुके हैं और ठीक ग्यारह बजे बारिष्टर साहब तथा एक और अंगरेज अफ़सर के साथ भाई दयालसिंह यहां आजायंगे।"

यों कहकर जेलर साहब वहांसे जाया ही चाहते थे कि मैंने उन्हें रोका और उनसे यों कहा,—"महाशय, तनिक ठहर जाइए और मेरी एक बिनती सुन लीजिए।"

यह सुन कर वे ठहर गए, तब मैं उनसे यों कहने लगी,— "महोदय, महीनों से मैं यहां पर हूं, इसलिए आप इतने दिनों में मेरे स्वभाव को भली भांति जान गए होंगे। देखिए, अपने पिता के मरने के बाद जब मैं घर से बिदा हुई थी, तब दूसरे गावं में जाने पर मुझे एक चौकीदार ने दया करके दूध पिला दिया था। इसके पीछे जब मैं कानपुर की कोतवाली में आई, तब वहां पर भी बराबर दूध ही पीकर अपना दिन काटती रही। फिर

वहांसे मैं इस जेल में भेजी गई और अभी तक यहीं पड़ी हुई हूं। यहां भी, जिस दिन से मैं आई हूं, बराबर दूध ही पी रही हूं और सिवाय दूध या पानी के, अपने घर से चलने के बाद से लेकर आज तक कोई भी तीसरी चीज मैंने अपने मुहं में नहीं डाली है। तो फिर यह सब जान बूझ कर भी आपको आज क्या होगया, जो आपने मेरे खाने के लिये इतनी तैयारी की ? आप तो यह बात जानते ही हैं कि जेल के अन्दर आने पर जेल की रसोई खाने के लिये मुझसे बहुत कुछ गया, पर जब तीन तीन, चार चार दिन तक केवल जल ही पीकर मैं रह गई, तब झख मारकर आपलोगों को मेरे लिये दूध की व्यवस्था करनी पड़ी। फिर यह सब जान बूझकर भी मेरे चिढ़ाने के लिये आज इतनी तैयारियां आपने क्यों कीं ? क्या आपको यह विश्वास है कि जेल के अन्दर रहकर मैं इन सब सुख की चीजों को कभी छूऊंगी भी ? हां, यह आपको अधिकार है कि मुझे चाहे जिस कोठरी में रक्खें, पर जेल के अन्दर मैं जब तक रहूंगी, तब तक उसी ढंग से रहूंगी, जिस ढंग से कि अब तक रही हूं। अर्थात् मुझे खाने के लिये कुछ न चाहिए, हां, पीने के लिये दूध और पानी जरूर चाहिए। दूध मैं उसी तरह मिट्टी के पुरवे (बर्त्तन) में पीऊंगी, जिस तरह कि अब तक पीती आ रही हूं। मुझे पहिले की भांति नित्य कच्चा दूध मिलना चाहिए और मेरे दूध में कभी भी मीठा न डालना चाहिए। पानी की एक लोहे की बालटी और एक टीन का गिलास मेरी कोठरी में जरूर रहना चाहिए,जैसा कि अब तक रहता आया है। इसलिये आप अपने ये सुराही, गिलास, पूरी, मिठाई और फलों को यहां से लेजाइए, और मेरे सोने के लिये जो चार पाई लाई गई है, उसे भी यहांसे हटाइए। मुझे बैठने के लिये चौकी की भी आवश्यकता नहीं है और बढ़ियां कंबल भी मुझे न चाहिए। बस, केवल दो मामूली कंबल बहुत हैं, जिनमें से एक को मैं धरती में बिछा लूंगी

और दूसरे को ओढ़कर यह जाड़े की रात काट डालूंगी। हैं! मेरे फेर देने पर भी, फिर यहां पर ये दो दो नई धोतियां क्यों लाकर रक्खी गई हैं! हटाइए महाशय, इन सब चीज़ों को यहांसे हटाइए; क्योंकि ये सब मेरे काम में कभी भी नहीं आने की।"

मेरी ऐसी और इतनी लंबी-चौड़ी बातें सुनकर जेलर साहब टुकुर टुकुर मेरा मुहं निहारने लगे और ज़रा ठहरकर बोले,—"बेटी, दुलारी! तुम तो एक अनोखी लड़की हो! अरे, भाई! आज यह जो कुछ तुम्हारे लिये किया गया है, वह सब भाई दयालसिंह के हुकुम और बारिष्टर दीनानाथ के खर्च से किया गया है; और ऐसा करने की आज्ञा वे लोग आला अफ़सरों से ले चुके हैं। इसलिये अब तुमको यही उचित है कि तुम ज़ादे हठ न करो और अपने सहायकों की की हुई इस सहायता को स्वीकार कर लो।"

मैं बोली,—"नहीं, महाशय! यह कभी नहीं होने का; क्योंकि अभी तक इस बात का कोई निश्चय नहीं हुआ है कि मेरा क्या परिणाम होगा, अर्थात् मैं फांसी पडूंगी, या इस सांसत से छुटकारा पाऊंगी। तो, जब कि अभी इसी बात का कोई निश्चय नहीं है, तब मैं अब इस चला चली की बेला इन सुख के सामानों को जेल के अन्दर कदापि ग्रहण नहीं करूंगी। इसमें और भी एक बात है, और वह यह है कि मेरे पिता को मेरे यहांके दुष्ट नौकरों ने केवल गंगा में बहा दिया है और उनके उत्तरकाल का कुछ भी क्रिया-कर्म नहीं हुआ है। ऐसी अवस्था में, इस जेल के अन्दर रह कर भी मैं इन सब चीजों को कैसे छू सकती हूं? सुनिए महाशय, मैं जो केवल दूध पीकर अपने प्राणों की रक्षा कर रही हूं, यह क्यों? सुनिए, इसका एक कारण है और वह यह है कि मैंने मन ही मन ऐसी प्रतिज्ञा की है और ऐसा व्रत किया है कि यदि भाग्यों से मैं इस जेल से जीती-जागती छूट गई तो घर जाकर पहिले मैं अपने पिता का विधि पूर्वक श्राद्ध करूंगी, उसके बाद अन्न

खाऊंगी। किन्तु जब तक वैसा मैं नहीं कर लेती, तब तक ब्रह्मचर्य से रहूंगी, केवल दूध पीऊंगी और धर्ती में सोऊंगी। इसलिये हे महाशय, आप मुझ अभागी की इस तुच्छ बिनती को मान लीजिए और इस कोठरी में से इन सब चीजों को दूर हटाइए।"

मेरी ऐसी बातें सुनते सुनते दयावान जेलर साहब की आंखों में पानी छलक आया था, इसलिये उन्होंने दूसरी ओर मुंह फेर कर रूमाल से अपने नैन पोंछे और मेरी ओर बिना देखे ही यों कहा,—"ठीक कह रही हो, दुलारी! तुम बहुत ही ठीक कह रही हो। वास्तव में, जो कुछ तुमने कहा, उसमें रत्तीभर का भी फरक नहीं है और सचमुच तुम्हारी सी सुशीला लड़की को ऐसा ही करना भी चाहिए; परन्तु मैं क्या करूं! क्योंकि मुझे जो कुछ भाई दयालसिंहजी ने हुकुम दिया, मैंने वही किया; इसलिये, अब, जब तक वे मुझे दूसरी आज्ञा न देंगे, तब तक मैं केवल तुम्हारे कहने से ये सब चीजें यहांसे नहीं हटा सकता।"

इसपर मैंने यों कहा,—"अच्छी बात है, अब जो आपके जी में आवे, सो आप कीजिए; क्योंकि इस कोठरी में अभी बहुतेरी धर्ती खाली बची हुई है, उसीमें मैं बैठ या पड़ सकती हूं।"

वे बोले,—"अच्छा, अब वे तीनों साहब आया ही चाहते हैं। सो, उनके आने पर उनसे मैं तुम्हारी सारी बातें समझाकर कह दूंगा और तब वे जैसा मुझे हुकुम देंगे, वैसा मैं करूंगा।"

यों कह और दरवाजे में ताला लगाकर जेलर साहब यहांसे चले गए और मैं खाली धर्ती में बैठकर अपने फूटे कर्मों के लिये आंसू ढलकाने लगी।

पांचवां परिच्छेद।

सहायक।

" तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि तादृशः।
सहायास्तादृशाश्चैव यादृशी भवितव्यता॥"
(नीतिविवेके)

थोड़ी ही देर पीछे ग्यारह बजे और जेलर साहब के साथ भाई दयालसिंहजी और बारिस्टर साहब आपहुंचे। जेलर साहब ने मेरे कैदखाने का दरवाजा खोल दिया और वे तीनो उस कोठरी के बाहर खड़े होगए। उन लोगों को देखकर मैं भी उठकर खड़ी होगई थी।

मुझे वैसे ढङ्ग से सिर झुकाए हुए खड़ी देखकर भाई दयालसिंहजी ने मुझसे यों कहा,—"बेटी, दुलारी! तुम्हारी सारी बातें जेलर साहब की जबानी मुझे अभी मालूम हुई हैं। तुमने जो कुछ कहा, वह बहुत ही ठीक कहा; पर यहां पर मैं एक ऐसी बात तुम्हें सुनाऊंगा, जिसे सुनकर तुम्हें कुछ सन्तोष होगा और तब फिर तुमको इतने व्रत या नियम करने की कोई आवश्यकता न रह जायगी।"

मैंने पूछा,—"तो वह बात कौन सी है?"

वे कहने लगे,—"क्या, यह बात तुम जानती हो कि तुम्हारे दूर के नाते के कोई चचा भी हैं?"

यह सुनकर मैंने तुरन्त कहा,—"हां,हैं; वे कानपुर के पास ही एक गांव में रहते हैं और उनका नाम रघुनाथप्रसाद तिवारी है। एक बेर वे मेरे यहां आए थे, तब मैंने उन्हें देखा था; पर इस बात को बहुत दिन होगए हैं। वे मेरे यहां किस काम के लिये आए थे, यह तो मुझे नहीं मालूम, पर इतना मुझे अच्छी तरह याद है कि एक दिन मेरे पिता के साथ उनकी बड़ी लड़ाई हुई थी और

वे तनग कर चले गए थे । इस बात को आज आठ बरस हुए होंगे। बस, फिर तबसे न तो मैंने उन्हें कभी देखा और न उनका कोई जिक्र ही अपने पिता के मुह से सुना। अस्तु, तो इस समय आपने उनका जिकर क्यों किया ?"

वे बोले,—"सुनो, कहता हूं। मैं तुम्हारे गांव पर अभी कई दिन हुए, गया था और तुम्हारे चचा रघुनाथप्रसाद तिवारी से भी मिला था। उनकी जबानी, तथा उस गांव के और और लोगों की जबानी भी मुझे यह बात मालूम हुई कि, 'तुम्हारे पिता के मरने की खबर पाकर वे तुम्हारे घर आए,' पर घर आने पर जब उन्हें यह मालूम हुआ कि, 'तुम्हारे पिता गङ्गा में बहा दिए गए हैं आर तुम खून के झमेले में फंस गई हो;' तब उन्होंने तुम्हारी आशा तो छोड़दी और तुम्हारे पिता का पुत्तल-विधान कर के उनका विधिपूर्वक श्राद्ध किया। फिर श्राद्ध से निबटने पर एक दो बार वे तुम्हारी टोह लेने कानपुर भी आए थे; पर जब उन्होंने यह देखा कि खून के जुर्म में तुम पूरे तौर से जकड़ गई हो, तो फिर वे तुम्हारे गांव पर चले गए और तुम्हारे पिता के घर-द्वार और खेत पर अदालती कार्रवाई करके उन्होंने अपना कबजा कर लिया। अब वे अपने गांव को छोड़कर तुम्हारे पिता के घर में अपनी गृहस्थी के साथ आ बसे हैं और खेती-बारी करने लगे हैं। तुम्हारे पिता के साथ आठ बरस पहिले जो तुम्हारे चचा का झगड़ा हुआ था, उसकी बात भी वे मुझसे कहते थे। वह बात यही है कि वे अपने साले के लड़के के साथ तुम्हारा ब्याह कर देने के लिये बड़ा आग्रह कर रहे थे, पर तुम्हारे पिता ने उनकी वह बात नहीं मानी थी। बस, उस लड़ाई-झगड़े की जड़ यही थी। हां, तुम्हारे मुकद्दमे में जो उन्होंने कुछ भी पैरवी नहीं की, इस बात के लिये जब मैंने उन्हें बहुत फटकारा, तब उन्होंने अपनी गरीबी का हाल कहकर रोना प्रारम्भ किया। फिर वे मेरे

साथ तुमसे मिलने आना चाहते थे, पर यह समझकर मैं उन्हें अपने साथ नहीं लाया कि एक बेर इस बारे में तुमसे पूछ लूं, तब उनसे तुम्हें मिलाऊं। बस, मेरे इतने कहने-सुनने का मतलब केवल यही है कि तुम्हारे पिता का श्राद्ध इत्यादि होगया है, इसलिये अब तुम उस बात की चिन्ता छोड़ो।"

भाईजी की ये बातें सुनकर कुछ देर तक तो मैं चुप रही, फिर यों कहने लगी,—"सचमुच, मेरे पिता का श्राद्ध होगया, यह सुन कर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। वास्तव में, मेरे पिता के श्राद्ध करने का अधिकार मेरे चचा को ही था। सो, ऐसा करके उन्होंने बहुत ही अच्छा काम किया। क्योंकि मैं पुत्री हूं, इसलिये मेरा किया हुआ श्राद्ध कदाचित शास्त्रानुकूल न होता। अस्तु, और यह बात सुनकर भी मुझे बड़ा सन्तोष हुआ कि मेरे चचा ने मेरे पिता की बची बचाई जगह-जमीन पर दखलकर लिया; क्योंकि वे कुटुम्बी हैं और गोत्री भी हैं, इसलिये मेरे पिता की सम्पत्ति के वे ही सच्चे अधिकारी हैं। सो, अधिकारी ने अपना अधिकार पाया, यह बहुत ही अच्छी बात हुई। क्योंकि शास्त्र के अनुसार अपने पिता की सम्पत्ति पर पुत्री का कोई अधिकार नहीं होता। खैर, यह सब तो हुआ, पर फिर भी आपलोगों से मैं हाथ जोड़कर यही बिनती करती हूं कि जबतक मैं फांसी से छुटकारा न पाऊं और जेल से बाहर न होऊं, तबतक आपलोग मुझे उसी अवस्था में पड़ी रहने दें, जिस दशा में कि मैं इतने दिनों से जेल में रह रही हूं। बस, मेरी इस प्रार्थना को आप कृपाकर स्वीकार कीजिए, तभी मुझे सच्चा और हार्दिक सुख सन्तोष मिलेगा।"

इस पर बारिस्टर साहब तो कुछ भी न बोले, पर भाई दयालसिंहजी बड़ा आग्रह करने लगे। पर अब मैंने किसी तरह भी उनकी बात न मानी, तो उन्होंने बहुत ही दुखी होकर जेलर साहब से यों कहा कि,—"अच्छा, साहब! जिसमें यह लड़की

सन्तुष्ट हो, वही आप कीजिए।"

यह सुनते ही जेलर साहब ने पांच-चार कांस्टेबिलों को बुलाया और उनके आने पर जेलर साहब के हुक्म से सारी चीजें उस कोठरी में से हटा दी गईं। इसके बाद लोहे की बालटी में पानी और टीन का गिलास लाकर रख दिया गया। और दो नया, किन्तु साधारण कंबल भी मुझे दे दिया गया। इसके बाद उन्हीं दोनों कहारियों में से एक कहारी एक कोरी हंड़िया में दूध ले आई, जिसे बाहर जाकर मैंने पी लिया। फिर जब मैं मुहं हाथ धोकर अपनी कोठरी में लौट आई, तब जेलर साहब मेरी कोठरी का ताला खुला छोड़कर चले गए! मैंने देखा कि आज मेरी कोठरी के आगे कोई कांस्टेबिल नहीं टहल रहा है!!!

जेलर साहब के जाने पर मेरी कोठरी के बाहर दालान में भाई दयालसिंह और बारिस्टर साहब एक एक कुर्सी पर बैठ गए और भाईजी के कहने से मैं अपनी कोठरी के अन्दर जमीन में बैठ गई।

मेरा ऐसा ढंग देखकर भाई दयालसिंहजी ने कहा,—"हैं, हैं! यह तुम क्या करती हो? ऐसे जाड़े-पाले में खाली धर्त्ती में क्यों बैठती हो?"

यह सुन और सिर झुकाकर मैंने जरा सा मुस्कुराकर कहा,—"जी, एक तो मुझे सर्दी-गर्मी के झेलने का जन्म से ही अभ्यास पड़ा हुआ है, दूसरे इस जेल ने मुझे और भी ठोस बना दिया है।"

यों कहते कहते मेरी दृष्टि बारिष्टर साहब की ओर गई तो मैंने क्या देखा कि वे मुहं फेरकर अपनी आंखें पोछ रहे हैं! यह देखकर मुझे बड़ा अचरम्भा होने लगा कि, 'हाय, मुझ अभागिन के लिये वे इतने दुखी क्यों हो रहे हैं!'

छठवां परिच्छेद ।

सज्जनता ।

" किमत्र चित्रं यत्सन्तः परानुग्रहतत्पराः ।
न हि स्वदेहशैत्याय जायन्ते चन्दनद्रुमाः ॥"
(कालिदासः)

पर, उस बात पर मैं अधिक ध्यान न देने पाई, क्योंकि भाईजी ने अबकी बार जरा बिगड़कर यों कहा,—" बस, बहुत हुआ, एक लड़की को अपने बड़ों के आगे इतना हठ और इतनी ढिठाई कभी न करनी चाहिए, इसलिये अब मैं तुम्हें यह आज्ञा देता हूं कि तुम इन दोनों कंबलों में से एक को बिछा लो और दूसरे को ओढ़ कर सहूलियत से अपनी कोठरी में बैठ जाओ । "

यह सुनकर फिर मैंने कुछ भी न कहा और चुपचाप एक कंबल को धर्त्ती में डालकर मैं उस पर बैठ गई और दूसरे को मजे में मैंने ओढ़ लिया । सचमुच, उस समय मुझे बड़ा जाड़ा लग रहा था, क्योंकि सबेरे मैं ठंढे पानी से खूब नहाई थी कि नहीं! इसलिये भाईजी की इस डांट-फटकार को मैंने मन ही मन अनेक धन्यवाद दिए और सर्दी से कांपते हुए कलेजे को धीरे धीरे गरम किया ।

भाईजी ने कहा,—"तुमने जो अपने इजहार में यह लिखाया था कि, 'मेरे घर की सारी चीजें कालू वगैरह लूट लेगए थे,' इस बात की जांच मैंने तुम्हारे गांव पर जाकर की थी, पर इस बात का ठीक ठीक पता मुझे किसीने भी न दिया । हां, तुम्हारी उस बात को तुम्हारे चचा ने जरूर नकारा था और उन्होंने मुझसे यों कहा था कि, 'मैं जब इस घर में घुसा, तब इसमें एक सुहारी भी नहीं पाई गई थी ।' तुम्हारे चारों बैल भी गायब हैं और उनका कुछ भी पता नहीं है । जिस गाड़ी पर चढ़कर तुम अपने घर से

रसूलपुर के थाने में गई थीं, उस गाड़ी और उसके दोनों बैलों का भी कुछ पता नहीं लगा कि वे क्या हुए, या उनपर किसने अपना कब्जा किया। मेरे दरयाफ्त करने से यह भी मालूम हुआ कि, 'हिरवा गाऊ की मां हुलसिया भी अपने लड़के के खून होने के तीन चार दिन बाद पलेग से मर गई और हिरवा की नौजवान ओरू फलिया न जाने कहां चल दी। इसके अलावे, तुम्हारे इजहार में कहे हुए—हिरवा, नव्वू, धाना, परसा और कालू—ये पांचों तो खून हो ही चुके थे; और इन पांचों के अलावे बाकी के वे जो—घीसू, बहादुर, तिनकौड़ी, हेमू, कतलू, रासू और लालू वगैरह—सात आदमी थे, उनका भी पता मैंने लगाया; जिसपर मुझे यह मालूम हुआ कि पलेग देवता उन सातों को भी चट कर गए हैं! केवल इतना ही नहीं, वरन तुम्हारे वे तीनों चरवाहे भी, जिनका नाम ढोंढ़ा, घोंघा और फलगू था, पलेग की भेंट होगए। फिर मैं रसूलपुर के चौकीदार दियानतहुसेन और रामदयाल से भी मिला, पर उन दोनों ने मुझसे वही बात कही, जो कि वे अपने अपने इजहार में कह चुके हैं। अर्थात् उन दोनोंने यह कहा कि, "हां, दुलारी नाम की एक जवान लड़की बैलगाड़ी पर यहां आई थी, जिसे कोठरी में बन्द करके हींगन चौकीदार के साथ अबदुल्ला थानेदार उस लड़की के गांव पर पांच पांच खून का पता लगाने उसी लड़की की बैलगाड़ी पर चढ़कर गए थे। पर रात को वे दोनों इक्के पर वापस आए और तब अबदुल्ला ने इस चौकी पर के हम छओं चौकीदारों को बुलाकर यह हुक्म दिया कि, 'अब तुम सब अपनी कोठरी में चले आओ और जबतक तुम लोगों को हींगन चौकीदार या मैं न पुकारूं, तबतक अपनी कोठरी से हरगिज बाहर न निकलना। क्योंकि अब मैं उस खूनी औरत से खून कबूल कराऊंगा, इसमें मुमकिन है कि वह खूब शोर गुल मचावे; इसलिये तुमसभों को यह हुकुम दिया जाता है कि उस औरत

के चीखने-चिल्लाने की आवाज़ सुनकर यहां हरगिज़ न आना और अपनी कोठरी के अन्दर रहना।' बस, अपने अफसर का ऐसा हुकुम सुनकर हम छओं चौकीदार अपनी कोठरी में आ बैठे। इसके बाद क्या हुआ,इस बात की खबर हमलोगों को नहीं है। हां, जब उस जवान लड़की ने हमलोगों की कोठरी के पास पहुंचकर हमलोगों को पुकारा और यह कहा कि, 'हींगन और अब्दुल्ला आपस में लड़ झगड़ कर कट मरे हैं, इसलिये तुमलोग उन्हें आकर देखो।' तब इतना सुनते ही हमलोग बहुत ही घबराए और तुरन्त हमलोगों ने जाकर क्या देखा कि, 'हींगन और अब्दुल्ला—दोनों मरे पड़े हैं, सारी कोठरी और तख्तेपोश खून से रंग गया है, अब्दुल्ला का सिर कटा हुआ है, हींगन के कलेजे में तलवार घुसी हुई है और ये दोनों बेजान होकर तख्त पर लुढ़के पड़े हैं!' यह सब हाल देखकर हमलोग बहुत ही घबराए और रामदयाल इस वारदात की खबर करने तुरन्त कानपुर रवाने किया गया। बस, इतना ही हाल हमलोग जानते हैं, जो अपने इजहारों में लिखवा चुके और कचहरी में भी कह चुके हैं। और यह बात जो उस खूनी औरत ने अपने इजहार में कही है कि, 'रामदयाल ने मुझे दूध पिलाया' यह बिलकुल झूठ है। उसे किसीने दूध तो क्या, पानी भी नहीं पिलाया। इसके अलावे, उस औरत की वह बात भी बिल्कुल झूठ है, जो कि उसने अपने बयान में रामदयाल और दियानतहुसेन का नाम लेकर अब्दुल्ला और हींगन के बारे में कही है। क्योंकि रामदयाल और दियानतहुसेन ने अब्दुल्ला और हींगन के खिलाफ उस औरत से कुछ भी नहीं कहा था। यहांतक कि उससे किसी भी चौकीदार ने किसी किस्म की भी बातचीत नहीं की थी।" इत्यादि। बस, उन दोनों का बयान सुनकर फिर मैं कानपुर वापस आ गया।"

सातवां परिच्छेद ।

हितोपदेश ।

" माता मित्रं पिता चेति स्वभावात्त्रितयं हितम् ।
मातुः पितुः परं मित्रं यद्वचः परमं हितम् ॥ "
(हितोपदेशे.)

यों कहकर भाईजी फिर मुझसे बोले,—" दुलारी, अब तुम अपना बयान मेरे आगे कह जाओ; पर इतना तुम ध्यान रखना कि इस समय जो कुछ तुम कहो, उसे खूब अच्छी तरह सोच-समझ कर कहना । "

यों कहकर भाईजी ने अपने जेब में से एक मोटी सी पोथी निकाली, जो सादे कागजों की थी । बस, उस पुस्तक को एक हाथ में ले और दूसरे हाथ से स्याही से भरी हुई कलम पकड़कर उन्होंने मेरी ओर देखा ।

मैंने धीरे से कहा,—" आपने जो मुझे बार बार यह चेतावनी दी कि, ' मैं जो कुछ इस समय आपके आगे बयान करूं, वह सब सच ही कहूँ, झूठ न कहूँ । ' क्यों, आपके इस कहने का यही मतलब है न ? "

भाईजी ने कहा,—" नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है; अर्थात् मैं तुम्हें झूठी नहीं समझता, और न यही खयाल करता हूं कि तुमने अबतक अपने जितने बयान दिए हैं, उनमें कुछ भी झूठ कहा गया है । मेरे कहने का मतलब केवल यही है कि इस समय तुम अपने चित्त को खूब अच्छी तरह सावधान करके जो कुछ लिखवाओगी, उसके साथ मैं तुम्हारे पहिले के दिए हुए बयानों को मिलाऊंगा और तब इस बात की कोशिश कर सकूंगा कि तुम्हारे छुटकारे के लिये कौन सा " प्वाइन्ट " अच्छा है, जिसे पकड़ कर हाईकोर्ट के जजों के आगे बहस की जाय । "

यह सुन और जरा सा मुस्कुराकर मैंने कहा,—"लेकिन मेरा इस समय का लिखाया हुआ बयान तो अब हाईकोर्ट में पेश हो होगा नहीं; फिर आप क्यों मेरा फिर से, नए सिरे से बयान लेने का कष्ट उठाना चाहते हैं ?"

मेरी ऐसी बात सुनकर भाई दयालसिंह ने बड़ी नम्रता से कहा,—"बेटी, तुम इन मामलों के एंचपेंच को नहीं समझ सकतीं, इसलिये अब व्यर्थ हठ करके समय को न खोवो और अपना इज़हार लिखाना शुरू करदो।"

यह सुनकर मैं बोली,—"अच्छी बात है, लिखिए; पर इतना याद रखिए कि इस समय जो कुछ मैं लिखवाऊंगी, उसके साथ मेरे पहिले के दिए हुए तीनों बयान बिलकुल मिल जायंगे और सिवाय परिश्रम के, आपके हाथ कुछ भी न लगेगा।"

भाईजी ने कहा,—"नहीं, यह बात नहीं है; मेरे हाथ सब कुछ लगेगा; क्योंकि यदि तुम्हारे इस समय के लिखवाए हुए बयान के साथ तुम्हारे पेश्तर के तीनों बयान मिल जायं तो समझ लो कि मैंने बाजी मार ली और तुम बेदाग छूट गईं! बस, इसी लिये तो मैंने बार बार तुमसे यह बात कही है कि तुम ज़रा अपना चित्त खूब ठिकाने कर के, तब अपना बयान लिखवाओ।"

मैं बोली,—"तो अच्छी बात है, आप लिखिए, मैं कहती हूं।"

वे बोले,—"अच्छा, जरा सा ठहर जाओ; क्यों कि मैं तो क़लम पकड़े हुए लिखने के लिए तयार बैठा ही हूं, पर जरा सा तुम और ठहर जाओ और मेरे अफ़सर को आजाने दो। बस, उनके आजाने पर उन्हीं के सामने मैं तुम्हारा इज़हार लिखूंगा। उन्होंने ठीक साढ़े ग्यारह बजे यहां पहुंच जाने की बात कही थी, पर अब बारह बजा चाहते हैं! अस्तु, कोई चिन्ता नहीं, वे अब आते ही होंगे।"

मैंने पूछा,—"आपने अपने अफसर को यहां आने का क्यों कष्ट दिया ?"

भाईजी ने कहा,—'मैंने नहीं दिया, बल्कि इस कष्ट को उठाना उन्होंने स्वयं स्वीकार किया। अच्छा, इस बात को भी तुम सुन लो। बात यह हुई कि कल रात को मैं अपने अफसर, अर्थात् जासूसी महकमे के छोटे साहब से मिला और तुम्हारा सारा हाल उन्हें सुना कर मैंने उनसे यों कहा कि, 'वह लड़की बिलकुल बेकसूर है।' यह सुन कर उन्होंने मुझसे यों कहा कि, 'अच्छा, कल ग्यारह बजे मैं खुद वहां चल कर उस लड़की का इजहार लिखूंगा और अगर वाकई वह बेकसूर हुई तो मैं अपनी रिपोर्ट अपने बड़े साहब के पास भेजदूंगा और वे उस रिपोर्ट पर अपनी राय लिख कर हाईकोर्ट के जजों के पास भेज देंगे, जिसका नतीजा यह होगा कि उस रिपोर्ट पर खूब अच्छी तरह गौर करके हाईकोर्ट उस लड़की को बेगुनाह समझ कर छोड़देगी।"

भाईजी इतना ही कहने पाए थे कि एक लम्बे कद के साहब (अंगरेज) आ पहुंचे। उन्हें देखते ही भाईजी और बैरिस्टर साहब उठ खड़े हुए और जब वे साहब बीच की कुर्सी पर बैठ गए, तो उनकी दाहिनी ओर भाई दयालसिंह और बाईं ओर बारिस्टर साहब बैठगए। यहां पर यह भी कह देना उचित होगा कि उस समय मैं भी उठ खड़ी हुई थी और उन तीनों महाशयों के बैठ जाने पर बैठ गई थी।

अस्तु, कुछ देर तक भली भांति मेरी ओर देख कर उन अंगरेज अफसर ने भाईजी से कहा,—"अच्छा, अब आप इस औरत का इजहार हिन्दी में लिखें, पर मैं अङ्गरेजी में लिखूंगा और फिर पीछे अपनी राय के साथ उसे बड़े साहब के पास भेज दूंगा। हां, इस औरत के वे तीनों बयान कहां हैं, जो इसने पुलिस, मजिष्ट्रेट और जज के आगे दिए थे?"

यह सुन कर बारिस्टर साहब ने अपने पाकेट में से फीता बंधा हुआ एक पुलिंदा निकाल कर खोला और फिर उसे



साहब के आगे रखकर यों कहा,—" लीजिए, इस मुकद्दमे के कुल कागजात ये हैं।"

साहब ने उसे ले, उलट-पलट कर देखा और फिर बारिष्टर साहब के हाथ में उसे देकर कहा,—"आप इसे देखिए और अब जो यह औरत अपना इजहार लिखावेगी, उससे इसे मिलाते जाइए। अगर कहीं पर इस वक्त के बयान से पहिले के दिए हुए बयानों में कुछ फर्क पड़े तो उस जगह पर लाल पेन्सिल से निशान कर दीजिएगा।"

इस पर बारिष्टर साहब ने "अच्छा" कहकर उस कचहरीवाली मिसिल को अपने बांए हाथ से पकड़ा और दाहिने हाथ में लाल पेन्सिल लेली।

भाईजी पहिले ही से सादे कागजों की पोथी और कलम लिए हुए बैठे थे। अब अंगरेज अफसर ने भी भाईजी की तरह एक सादी किताब और स्याही-भरी कलम लेली और मेरी ओर देखकर यों कहा,—" टुमारा नाम बोलो।"

मैं बोली,—" मेरा नाम दुलारी है।"

साहब,—"डेको, डुलारी! टुम को हाम एक बाट बोलटा है;"

मैंने पूछा,—" जी, कहिए।"

साहब ने कहा,—" टुम बरा भला लेड़को हाय। इश वाशते टुम को शब बाट शच शच बोलना होगा।"

मैंने यों कहा,—" मेरी झूठ बोलने की बान नहीं है।"

इस पर साहब ने कहा,—" टो, अच्छा बाट है, बोलो।"

यह सुनकर मैंने मन ही मन जगत्पिता परमेश्वर और अपने माता-पिता को बार बार दण्डवत्प्रणाम किया और उसके पीछे यों अपनी जीवनी कहनी प्रारम्भ की।

आठवां परिच्छेद ।

दुर्दैव ।

" यद्पि जन्म बभूव पयोनिधौ,
निवसनं जगतीपतिमस्तके ।
तदपि नाथ पुराकृतकर्मणा,
पतति राहुमुखे खलु चन्द्रमा ॥"

(व्यासः)

मैं सिर झुकाए हुए यों कहने लगी,— कानपुर जिले के एक छोटे से गांव में मेरे माता-पिता रहते थे। उस गांव का नाम आप जानते ही हैं, इसलिये अब मैं अपने मुहं से उसका नाम नहीं लिया चाहती। हां, यह मुझे बतलाया गया है कि, 'तू फलाने गांव की रहने वाली है।' इस बात को मैंने स्वीकार भी किया है, पर मैं अब उस दुखदाई गांव का नाम अपने मुहं से नहीं लिया चाहती। उस गांव के मालिक या जिमीदार कानपुर के एक बड़े प्रतिष्ठित कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं और गांव में हजार आठ सौ के लगभग आदमी बसते हैं। उनमें ब्राह्मण, क्षत्री, बनिए, भुइंहार, बढ़ई, लुहार, कहांर, कुनबी, नाई, बारी, धोबी, तेली, चमार, दुसाध, जुलाहे आदि सभी जाति के लोग रहते हैं और वह गांव गंगा के किनारे ही पर बसा हुआ है। रहते तो हैं उस गांव में प्रायः सभी जाति के लोग, पर जादे संख्या ब्राह्मणों और बनियों की है और प्रायः सभी लोग खेती-बारी का काम करते हैं।

उसी सत्यानाशी गांव में मेरे माता-पिता भी रहते थे। यद्यपि अदालत ने मुझे यह बतलाया है कि, 'तेरे पिता फलाने ब्राह्मण थे;' पर मैं अभागी अब अपने मुहं से यह बात नहीं कहना चाहती कि मेरे पिता कौन ब्राह्मण थे। हां, पढ़नेवाले मेरी इस लिखावट से जो चाहें, सो मतलब निकाल लें। किन्तु हां, यह बात मैं

स्वीकार करती हूं कि उस गांव के ब्राह्मणों में कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की संख्या सबसे ज़ादे है।

मेरे माता-पिता का क्या नाम था, यह बात भी अदालत को मालूम होगई है, जिसे मैंने भी सकारा है; पर अब इस अवस्था में पड़कर मैं निगोड़ी अपने उन वैकुण्ठवासी माता-पिता के पवित्र नाम को अपने अपवित्र मुख से नहीं कहना चाहती।

मेरे पूज्य पिताजी की अवस्था मरने के पहिले पचपन वर्ष की और मेरी माता की चालीस बरस की थी और मेरी सोलह साल की है। मेरे प्यारे पिता अच्छे पण्डित थे, पर पुरोहिताई का काम छोड़कर वे खेती-बारी करते थे। मेरी माता भी पढ़ी लिखी थीं, इसीसे पिता-माता की शिक्षा पाकर मैं भी कुछ थोड़ा बहुत पढ़ लिख गई हूं। मेरे पिता का निज का कच्चा मकान था। मकान के साथ एक छोटी सी फुलवारी भी थी, दो तीन गौ-भैंसे भी थीं और चार जोड़ी बैल और चार ही हरवाहे (बैल हांकने और हल जोतनेवाले) भी थे। बड़े सुख-चैन के साथ मेरे माता-पिता का, और उन्हीं की बदौलत मेरा भी दिन बीतता जाता था और यदि सच पूछा जाय तो कोई भी कष्ट न था। किन्तु बैरी विधाता से हमलोगों का वह तुच्छ सुख भी न देखा गया और उस निगोड़े ने हमलोगों के सारे आनन्द पर बज्र गिरा दिया!

बात यह हुई कि कातिक की पूनो नहा कर मेरी माता पीड़ित हुईं। उन्हें बड़े बेग से ज्वर चढ़ आया और तीसरे दिन उनके गले में गिलटी निकल आई! यह देखकर मेरे पिता बहुत घबराए और तब हमलोगों ने यह जाना कि यह तो प्लेग है!

मेरे छोटे से उस गांव में वैद्य-डाक्टर तो थे नहीं, इसलिये उधर तो पिताजी किसी वैद्य की खोज में सबेरे ही कानपुर गए और इधर दोपहर होते होते मेरी प्यारी माता चल बसीं। उस समय गांव की कई स्त्रियां आगई थीं और उन्हीं सभों ने मेरी

माता की वह अवस्था देखकर उन्हें धर्तों में उतार दिया था। क्योंकि उस समय मैं अपने आपे में न थी और उन स्त्रियों के रोकने पर भी बार बार पछाड़ खा खा कर अपनी माता के शव पर गिर गिर पड़ती थी।

संझा होते होते एक वैद्यजी को साथ लेकर पिताजी लौट आए, पर जब उन्होंने घर का हाल देखा तो वे मूर्छित होकर मेरी माता के शव पर गिर गए। फिर वैद्यजी का क्या हुआ, यह तो मुझे नहीं मालूम; पर हां, यह मैंने देखा कि गांव के लोग इकट्ठे होगए और रात के नौ बजते बजते मेरे पिताजी मेरी माता को फूंक और नहा कर घर लौट आए। मैंने भी उस समय माता के शव के साथ गङ्गा किनारे जाना चाहा था, पर मुझे कई स्त्रियों ने पकड़ रक्खा था; इसलिये मैं गङ्गा तो न जाने पाई, पर हां, जब मेरे पिता घाट से लौटकर घर आगए, तब कुएं पर मैं नहलाई गई।

फिर, तब गावं की स्त्रियां तो अपने अपने घर गईं और हम दोनो (पिता-पुत्री) ने सारी रात रो-पीट कर गवांई। यद्यपि मेरे पिता मुझे बहुत कुछ ढाढ़स देते और समझाते बुझाते थे, पर जब अपनी प्यारी और सुशीला पत्नी का ध्यान उन्हें हो आता, तो वे बहुत ही विलाप करने लगते और उनका कलपना देखकर मैं भी बहुत ही बिकल होती और छाती मूड़ कूट कूट कर बहुत ही घोर विलाप करने लग जाती थी।

खैर, किसी किसी तरह दस दिन बीते। फिर ग्यारह, बारह और तेरह दिन भी बीते और मेरे पिता ने मेरी माता के श्राद्ध से छुट्टी पाई। किन्तु हाय, जिस दिन मेरी माता की तेरहीं हुई थी, उसी रात को मेरे पिता भी पड़े और उन्हें दूसरे ही दिन गिलटी निकल आई। यह देखकर मेरे दुःख का कोई वारापार न रहा और सिवाय रोने पीटने के और मैं कुछ भी कर धर न सकी। उस समय तक सारे गावं में प्लेग फूट निकला था और वे लोग,

जिन्हें कुछ भी समाई थी, इधर उधर भागे जारहे थे। एक तो वह हजार-आठसौ आदमियों की बस्ती का छोटा सा गांव था ही, उस पर जब लोग घर-द्वार छोड़ छोड़ कर भागने लगे, तब तो और भी उस गांव की श्री नष्ट होगई और जिधर देखो, उधर ही भयङ्करता राक्षसी मुहं बाए घूमती हुई दिखाई देने लगी। हाय, यह सब देख सुन कर मेरा हिया और भी फटने लगा, पर मैं लाचार थी और कुछ भी कर-धर नहीं सकती थी। मेरे घर के पास एक नाऊ (नाई) रहता था, जिसका नाम हिरवा था; उसे मैंने चार रुपए देकर यह कहा कि, 'कानपुर से कोई अच्छे वैद्य को बुला लावे,' पर वह चण्डाल जो वे रुपए लेकर गया, सो उस दिन लौट कर आया, जिस दिन उसकी मौत लिखी थी।

अस्तु, इसी तरह तीन दिन पीछे रात को मेरे प्यारे पिता भी कूच कर गए और मुझ निगोड़ी को एक दम से अनाथ कर गए। हाय, हाय! भला अब उस शोक—उस अपार शोक का हाल मैं क्योंकर किसीके आगे प्रगट करूं! बस, यहां पर इतना ही समझ लेना चाहिए कि गांव के बचे-खुचे लोगों में से तो उस समय कोई भी न आया; पर हां, मेरे यहां जो चार हरवाहे नौकर थे, वे ही मेरे पिता को गंगाजी उठा ले गए। यह देखकर मैं भी उनके पीछे पीछे दौड़ी, पर जब मैं गंगा तट के पास पहुंची तो मैंने क्या देखा कि वे चारों हरवाहे लौट रहे हैं! यह देखकर मैंने उन हत्यारों से यह पूछा कि, 'तुमसभों ने मेरे पिता को कहां रक्खा है?' इस पर उन दुष्टों ने यह जवाब दिया कि, 'बस, अब उठो और चुपचाप घर लौट चलो। क्योंकि इस हाड़-तोड़ जाड़े की रात को गंगा नहाकर अपना प्राण न गंवाओ। हमलोगों ने तुम्हारे पिता को गंगा में बहा दिया है और अब घर लौटे जा रहे हैं। कल सबेरे जब खूब करारी धूप निकलेगी, तब गंगा में गोता लगा लेंगे।'

हाय, उन अभागों की यह बात सुनकर मैं पछाड़ खाकर वहीं गिर गई और मूर्छित होगई। मैं कबतक बे सुध रही, यह तो नहीं कह सकती, पर जब मुझे होश हुआ तो मैंने क्या देखा कि मैं अपने घर की एक कोठरी में चारपाई पर पड़ी हुई हूँ और मेरे पास दूसरी खाट पर उसी हिरवा नाई की मां तुलसिया पड़ी हुई नाक बजा रही है, जिसे कि मैंने कानपुर से वैद्य बुला लाने के लिए चार रुपए दिए थे।

यह सब देखकर मैं अपनी खाट पर उठकर बैठ गई और हिरवा की मां को बार बार पुकारने लगी। पर वह निगोड़ी सौ हांक देने पर भी तनिक न मिनकी, बरन और ज़ोर ज़ोर से नाक बजाने लगी। यह देखकर मैं उठी और टिमटिमाते हुए दीए की टेम को ठीक करके फिर अपनी चारपाई पर आ बैठी। उस समय अपने माता-पिता और साथ ही अपनी घोर विपत्ति का स्मरण करके मैं खूब ज़ोर ज़ोर से चिल्ला कर रोने लगी।

योंहीं मैं न जाने कितनी देर तक आप ही आप रोया की, इतने ही में मैंने क्या देखा कि वही हिरवा नाई, जिसकी उम्र बीस-बाईस बरस से ज़ादे न थी और जो देखने में महा कुरूप था, मेरी चारपाई पर आकर बैठ गया और मेरा एक हाथ पकड़कर अपने मैले दुपट्टे से मेरा आंसू पोंछने लगा!!!

यह तमाशा देखकर एक बेर तो मैं बड़े ज़ोर से चिहुंक उठी, पर तुरत ही उसके हाथ को झटकार और उसे अपनी चारपाई पर से ढकेलकर बड़े क्रोध से उसकी ओर निहारती हुई यों कहने लगी,—"क्यों रे, हिरवा! तूने और तेरी मां ने बराबर मेरे यहां के जूठे टुकड़े खाए हैं, तब ऐसी दशा में तू क्या समझकर मेरी चार-पाई पर आ बैठा और क्या सोचकर तूने मेरा हाथ पकड़ा?"

मेरी ये बातें सुनकर वह खिलखिला कर हंसने लगा और यों बोला कि,—"दुलारी, तू बड़ी सुंदर है और मैं कई बरस से तेरे

रूप-रंग को देख देख कर भीतर ही भीतर भुना जा रहा हूं। अब तक तो तेरे मां-बाप के डर से मैं अपना मन मारे बैठा रहा, पर अब मुझसे तेरे बिना छिनभर भी नहीं रहा जाता। सो, तू मेरी बात सुन और मेरे गले से लग जा। देख, जो सीधी तरह मेरी बात मान ले, तो अच्छा ही है; नहीं तो मैं जबरदस्ती तेरी इज्जत आबरू बिगाड़ दूंगा और सारे गांव में तेरी बदनामी का ढोल पीट कर तुझे मिट्टी में मिला दूंगा। इस समय तू अकेली है और अब तेरे सिर पर कोई भी नहीं है, इसलिये अपनी अवस्था पर अच्छी तरह बिचार करके तू मेरा कहना मान ले और मेरे हिये की लगी को बुझा दे।"

उस दुरात्मा पातकी की ऐसी खोटी बातें सुनकर मेरे तलुए से चोटी तक आग सी लग गई और मारे क्रोध के मैं भभक उठी। एक तो मैं अपनी माता—विशेषकर अपने पिता के शोक में बावली हो ही रही थी, उस पर निगोड़े हिरवा की पाप-कथा सुनकर तो मैं और भी पागल हो उठी और झट से अपनी खाट के नीचे उतरकर खड़ी होगई। फिर मैंने दांत पीस कर उस दुष्ट हिरवा से यों कहा कि, "बस, अब तू चुपचाप यहांसे अपना काला मुहं कर, नहीं तो तेरे लिये अच्छा न होगा।"

यह सुनकर वह बेहया फिर खूब ठठाकर हंसा और कहने लगा,—"अब तो मैं तभी यहांसे जाऊंगा, जब अपना जी ठंढा कर लूंगा।"

बस, महाशय! उसके मुहं से इतना निकलना था कि मैंने उछलकर उस पातकी को धर्ती में पटक दिया और उसके कलेजे पर सवार होकर ऐसे जोर से उसका गला दबाया कि फिर वह जरा भी न बोल सका। योंहीं देर तक मैं उसके गले को भरजोर दबाए रही। फिर मैं उसकी छाती पर से उतर कर दूर जा खड़ी हुई और उसकी ओर बिना देखे ही यों कहने लगी,—"बस, रे

चण्डाल ! अब तू उठ और यहांसे भाग नहीं तो मार ही डालूंगी। यों कहकर मैंने एक मूसल उठा लिया और जिस खाट पर उस (हिरवा) की मां सोई हुई थी, उस खाट की ओर देखा। मैंने क्या देखा कि वह खाट खाली पड़ी हुई है और उसपर हिरवा की मां हुलसिया नहीं है ! यह देखकर मैं बड़ी चकपकाई कि वह रांड कहां गई ? इतने में फिर मैंने हिरवा की ओर दीठ फेरी तो क्या देखा कि वह गया नहीं है, बल्कि जहां पड़ा था, वहीं पड़ा हुआ है ! यह देखकर मैंने उससे बार बार यों कहा कि, 'अब तू उठ और यहांसे चला जा,' पर वह जहां का तहां पड़ा ही रहा ! तब तो मैंने उसके पास जाकर उसके सिर में अपने पैर की दो तीन ठोकर मारी, पर वह जरा न मिनका ! यह देखकर मैं बहुत ही हैरान हुई और दीया लेकर उसका मुहं निहारने लगी। अरेरेरे! मैंने क्या देखा कि उसकी आंखों के दोनो ढेले बाहर निकल पड़े हैं, जीभ भी मुहं के बाहर आगई है और बहुतसा फेन और खून उसके मुहं से बहा और धीरे धीरे बह रहा है ! यह देखकर मेरा सारा बदन थर्रा उठा और वह मेरे हाथ का दीया हाथ से गिरकर बुझ गया ! मैं भी फिर खड़ी न रह सकी और चक्कर खाकर वहीं गिर पड़ी।

मैं कबतक बेसुध पड़ी रही, यह तो नहीं कह सकती, पर जब मुझे चेत हुआ तो मैंने क्या देखा कि मेरे हाथ-पैर बंधे हुए हैं, मैं अपनी चारपाई पर डालदी गई हूं, हिरवा भी धर्ती में जहां का तहां पड़ा हुआ है और उस कोठरी में चार आदमी आकर खड़े हुए हैं, जिनमें से एक के दाहिने हाथ में तलवार और बाएं में एक मोटा सा जलता हुआ पलीता है और बाकी के तीनों आदमियों के हाथों में खाली तलवारें हैं।

यह अजीब तमाशा देखकर मैं सन्नाटे में आगई और बार बार उस कोठरी के चारों ओर आंखें दौड़ाने और उन चारों आदमियों

के चेहरे की तरफ टकटकी लगाकर देखने लगी । उन चारों आदमियों को मैं चीन्हती थी, क्योंकि वे सब मेरे गांव के ही रहने वाले थे। उनमें से एक, जिसके हाथ में चलता हुआ पलीता था, वह नब्बू जुलाहा था, दूसरा घाना कोइरी था, तीसरा परसा कहार था और चौथा काल्लू कुरमी था। यह काल्लू मेरे पिता के उन्हीं चारों हरवाहों में से एक था, जिसने मेरे पिता का बहुत दिनों तक नमक खाया था।

सो, यह सब अनूठा तमाशा देखकर मैं घबरा गई और मन ही मन यह सोचने लगी कि, 'अब क्या करना चाहिए!'

बस, यहां तक मैं कह चुकी थी कि उन अंगरेज अफसर ने मेरा नाम लेकर मुझसे यों कहा,—"डुलारी, टुम जरा ठहर जाओ; क्योंकि डो बजा चाहटे हैं, इस वाशटे हम जरा नाशटा करने मांगटा।"

यह सुनकर मैंने ऊपर नजर उठाकर देखा, तो क्या देखा कि साहब अपनी कुर्सी पर से उठकर एक खानसामा के साथ खाना खाने जा रहे हैं। उनके जाते ही भाईजी भी उठे और यों कहकर एक ओर चले गए कि, "मैं भी जरा जलपान कर आऊं।"

यों कहकर भाईजी भी चले गए और वहां पर मेरे पास खाली बारिस्टर साहब रह गए। उन्होंने मेरी ओर जरा सा मुस्कुराकर देखा और यों कहा,—"बीबी दुलारी, मैं तुम्हें इस बात का विश्वास दिलाता हूं कि तुम जरूर छूट जाओगी।"

यह सुनकर मैंने अपनी आंखें नीची कर लीं और मन ही मन प्रसन्न हो तथा ओठों के अन्दर ही अन्दर हंसकर यों कहा,—"मुझ अभागी को छुड़ाकर आप क्या कीजिएगा?"

उन्होंने कहा,—"यह पीछे सोचा जायगा; पहिले तुम इस बला से छुटकारा तो पा लो।"

इस पर मैंने कुछ न कहा, बल्कि फिर मारे लज्जा के उनकी

ओर मैं देख भी न सकी।

वे फिर कहने लगे,—" एक बात और है। "

मैंने देखे बिना ही उत्तर दिया,—" आज्ञा कीजिए। "

वे बोले,—" आज्ञा करना तो अब व्यर्थ है, क्योंकि वह तो मानी ही नहीं जाती! हां, प्रार्थना अवश्य की जासकती है। सो भी तब, जब उसके मान लेने की आशा की जाय। "

मैं इस ढंग की उनकी बातें सुनकर मन ही मन बहुत ही अकपकाई कि वे कौन सी ऐसी बात कहना चाहते हैं, जिसके लिये इतनी भूमिका बांध रहे हैं! परन्तु मारे लाज के मेरी आंखें उनकी ओर न उठ सकीं और मैंने सिर झुकाए हुए ही यों कहा,—" आप जो कुछ कहना चाहते हों, उसे कृपाकर कहिए। "

वे बोले,—" अब मैं क्योंकर तुमसे कुछ कह सकता हूं; जब कि तुम इतनी बड़ी हठीली हो कि अपनी " टेक " के आगे किसी के कहने-सुनने पर कुछ ध्यान ही नहीं देतीं। "

अब भला, उनकी ऐसी बात का मैं क्या जवाब दे सकती थी! अस्तु, मैं कुछ न कुछ कहना ही चाहती थी कि इतने ही में भाईजी आगए और मैंने कुछ कहने-सुनने से छुट्टी पाई।

भाईजी अपनी कुर्सी पर बैठकर बारिस्टर साहब से अंगरेजी में कुछ बात चीत करने लगे, इतने ही में साहब बहादुर भी आ गए और उन्होंने अपनी कुर्सी पर बैठकर मुझसे यों कहा,— " दुलारी, अब तुम आगे बोलो। "

यह सुनकर मैंने कहा,—" बहुत अच्छा; सुनिए,—यद्यपि कालू की बातों ने मेरे कलेजे को मसल डाला था, पर बहुत जल्द मैंने अपने जी को ठिकाने किया और इशारे से कालू को अपने पास बुलाया। "

नवां परिच्छेद।

प्रलोभन।

" महामायासमा नारी महामायामयी स्मृता।
गच्छन्ति केऽस्या मायायाः पारं भुवि नरा मुने ॥"
(देवीभागवते)

इस इशारे को समझकर काल्लू तुरन्त मेरी खाट के पास आकर बैठ गया और बोला,—" कहो, क्या कहती हो ? "

मैंने पूछा,—" यह सब क्या होरहा है और तुम-सब यहां पर क्यों इकट्ठे होरहे हो ? "

मेरी बात सुनकर काल्लू कहने लगा,—" दुलारी, यह सब जो कुछ तुम देख रही हो, उसका असली सबब तुम्हारी अनूठी सुन्दरता ही है। सुनो दुलारी, तीन-चार बरस से इस गांव भर में तुम्हारे अनोखे रूप की धूम सी मच गई है और यहांके बहुतेरे आदमी तुम पर मरने लगे हैं। यों तो इस गांव के सैकड़ों आदमी तुम्हारे रूप पर जान दिए बैठे हैं, पर उनमें से हम-सब बारह जने ऐसे तुम पर लट्टू हुए हैं कि हमलोगों ने मिलकर एक गोठ (गोष्ठी—सभा) बनाई है और उसमें नित्य हमलोग इकट्ठे होते और तुम्हारे रूप का बखान कर कर के अपने अपने जी को बहलाते हैं। उन बारह आदमियों के नाम ये हैं, जिन्हें तुम जरूर ही जानती होगी। १ नब्बू जुलाहा, २ धाना कोहरी, ३ परसा कहार, ४ मैं काल्लू कुर्मी, ५ यह मरा हुआ हिरधा नाऊ, ६ घोसू बनियां, ७ बहादुर दूबे, ८ तिनकौड़ी कांदू, ९ हेमू भड़भूंजा, १० फतलू महाबाम्हन, ११ रामू चमार और १२ लाल्लू हलवाई। यों तो इस गांव के सैकड़ों आदमी तुमपर जीजान से निछावर होरहे हैं, पर हम बारह जने धीरे धीरे आपस में मिले और हमने अपनी एक जमात कायम की। फिर तो लाल्लू हलवाई की चौपाड़ (बैठक) में हमलोग रोज रात को

इकट्ठे होने लगे और बराबर इस बात की सलाह आपस में करने लगे कि, 'क्योंकर हम-सब तुम्हें हथियावें।' एक बात यहां पर और भी समझ लो,—वह यह है कि यद्यपि इस जमात में सभी जात के लोग आ मिले हैं, पर हम-सब आपस में इस तरह घी-खिचड़ी की तरह मिल गए हैं कि जात-पांत का बखेड़ा हमलोगों ने उठा दिया है और हमसब एक-साथ मिलकर खाते-पीते हैं। हमलोगों में मांस-मछली और दारू-शराब का भी परहेज नहीं है। खैर, सुनती चलो। जब तुम्हारी मां मर गई, तब हमलोगों को बड़ी खुशी हुई और हमसभों ने आपस में यह सलाह की कि, 'अब तुम्हारे बाप को किसी तरह से खपा डालना और तुमपर अपना कब्जा करना चाहिए।' किन्तु भगवान ने ऐसा बानक बना दिया कि हमलोग खून-खराबा करने से बच गए और तुम्हारे बाप ने आप ही मर कर हमलोगों का रास्ता साफ कर दिया। बस, तुम्हारे बाप के मरते ही हमलोगों ने आपस में एक सलाह पक्की कर डाली। फिर तो हम चारों तुम्हारे हरवाहे तुम्हारे बाप को उठाकर लेगए और गङ्गा में डालकर लौट पड़े। उस समय तुम भी वहीं मिली थीं, पर बेहोश होकर वहीं गिर गई थीं। खैर, फिर तो हम चारों जने तुम्हें यहां उठा लाए और इसी चारपाई पर तुम्हें डाल कर इस घर से बाहर निकले। तुम्हारे तीन चरवाहों को तो, जो कि मेरे मेल में नहीं आए थे, कुछ इधर उधर की समझा-बुझा कर मैने यहांसे टाल दिया और जब वे तीनो अपने अपने घर चले गए, तो हमलोगों ने हिरवा की मां को तुम्हारी चौकसी के लिये यहां बैठा दिया और तुम्हारे सारे घर की तलाशी लेनी शुरू की। थोड़ी ही देर में हमलोग तुम्हारे घर की सब चीज-वस्त उठा लेगए, पर जब उन सब चीजों को ठिकाने से रखकर लौटे तो तुम्हारे मकान के सदर दरवाजे पर हिरवा की मां दुलसिया मिली। उसने हमलोगों से यों कहा कि, 'तुम सब

जल्दी भीतर जाओ; क्योंकि दुलारी जाग पड़ी है और उसने हिरवा को पछाड़ कर उसका गला दबा लिया है।' यह सुनकर हमलोगों ने उसे तो उसके घर बिदा कर दिया और चटपट मैंने तुम्हारे घर की भूसा ढोने वाली गाड़ी में तुम्हारे ही दो बैल जोत कर तुम्हें यहांसे भगा लेजाने का बिचार किया। जब गाड़ी ठीक होगई और हमलोग भी तयार होगए, तो नब्बू ने एक पलीता बाल लिया और हमसब इस कोठरी में आए। यहां आकर हमलोगों ने क्या देखा कि, 'हिरवा तो मरा हुआ पड़ा है और उसीके पास तुम भी बेसुध पड़ी हुई हो!' यह हाल देखकर हमलोग बड़े चकपकाए कि तुम्हारे नाजुक हाथों ने उस हट्ठे-कट्ठे-पट्ठे हिरवा की जान कैसे ले डाली! खैर, फिर तो खुद मैंने तुम्हें उठाकर इसी चारपाई पर डाल दिया और साथ ही तुम्हारे हाथों और पैरों को भी मजबूती के साथ कसकर बांध दिया। बस, यही तो असल बात थी, जिसे मैंने तुम्हें सुना दिया। अब यह कहो, कि तुम्हारा क्या इरादा है? तुम सीधी तरह हमलोगों के साथ चलोगी, या जोर-जबर्दस्ती करने से?"

कालू की इस ढब की बातें सुनकर मैं कांप उठी, बहुत ही डर गई और मन ही मन यही बात सोचने लगी कि अब मेरी खैर नहीं है! पर फिर भी मन ही मन भगवान का स्मरण करके मैंने कोई बात ठीक की और कालू की ओर देखकर यों कहा,—"तो तुम्हारे बतलाए हुए और बाकी के सात साथी कहां हैं?"

यह सुनकर कालू ने कहा,—"वे सब पलेग के डर से इधर उधर भाग गए हैं। इस समय हम पांच ही आदमी इस गांव में रह गए थे, जिनमें से हिरवा बेचारे को तो तुमने गला घोंट कर मार ही डाला! बस, अब हम्हीं चार यार हैं, जो तुम्हें अभी—इसीदम यहां से कहीं दूसरी जगह ले जाया चाहते हैं। यदि तुम राजी-खुसी से चलो, तब तो बहुत ही अच्छी बात है; पर जो तुम यों न मानोगी

और हल्ला-गुल्ला करोगी, तो हमलोग बरजोरी तुम्हें यहांसे घसीट ले जायंगे ! बस, जो कुछ तुम्हारा इरादा हो, उसे जल्द कह डालो; क्योंकि रात पिछले पहर के पास पहुंच गई है, इसलिये अब हमलोग ज़ादे देर तक यहां ठहर कर अपने काम को बिगाड़ना नहीं चाहते।"

कालू की काल-समान बातें सुनकर मेरा कलेजा दहल उठा, पर फिर भी सर्व-भय-नाशिनी भगवती दुर्गा का स्मरण करके मैंने कालू से कहा,—"सुनो भाई, यदि एक बात का जवाब तुम मुझे ठीक ठीक दे दो, तो मैं अभी—बिना उज़ुर तुम्हारे साथ चली चलूं।"

मेरी बात सुन कर मानों उन सभी शैतानों ने आकाश का चांद पा लिया और सब के सब एक साथ बोल उठे कि,—"कहो, कहो, जल्द कहो; तुम जो कुछ कहा चाहती हो, झटपट कहडालो।"

उन सभों की बातों का रंगढंग देखकर मुझे कुछ आशा हुई और मैंने स्त्रियों की प्रलयङ्करी माया का विस्तार करना प्रारम्भ किया। मैंने कहा,—"सुनो भाई, हिरवा को मैंने जान बूझ कर नहीं मारा, पर वह मुर्दार आखिर मर ही गया ! ऐसी अवस्था में, जब कि हिरवा का मुर्दा घर में पड़ा हुआ है, मुझे यहांसे कहीं न कहीं भागना ही पड़ेगा। तो फिर जब कि तुमलोग मुझे यहांसे कहीं ले ही चल रहे हो, तो बस इससे बढ़ कर और कौन सी अच्छी बात हो सकती है ! अब रही यह बात कि तुमने जो अपनी बारह साथियों की मण्डली बतलाई है, उनमें से एक हिरवा तो मर ही गया, और सात जने यहांसे भागे ही हुए हैं। ऐसी अवस्था में अब यदि तुम केवल चार ही जने मुझे अपनी बनाओ और फिर किसी पांचवें का मुझे मुहं न देखना पड़े तो मैं राज़ी से तुमलोगों के साथ जासकती हूं।"

मेरी ऐसी बातें सुनकर वे चारों पापी मारे आनन्द के उछलने

कूदने लगे और पारी पारी से बार बार सभी जने यों कहने लगे कि,—"नहीं, प्यारी, दुलारी! अब हम चार यारों के अलावे पांचवां कोई भी साला तुम्हारी परछाईं भी नहीं छू सकेगा।"

यह सुन कर मैं मन हीं मन बहुत ही प्रसन्न हुई; क्योंकि उन बारह बदमाशों में से एक हिरवा तो मर ही चुका था, और सात उस समय भागे हुए थे। बस, अब उन चार दुष्टों से ही मुझे अपना पल्ला छुड़ाना था। सो, जब मैंने यह देखा कि मेरे चकमे का असर इन पाजियों पर हो रहा है, तब मैंने मन ही मन भगवान् को प्रणाम करके अपने छुटकारे का यह उपाय सोचा कि यदि इन चारों में से तीन शैतान किसी तरह और अलग किए जा सकें, तो फिर मैं काल्हू को समझ लूंगी। क्योंकि वह (काल्हू) मेरे यहां तीन चार बरस से रह रहा था, इसलिये उसके स्वभाव से मैं खूब अच्छी तरह जानकार होचुकी थी। वह बड़ा ताकतवर और पूरा उजड्ड था, और उस अकेले को चकमे में डाल कर मुझे अपने को बचा लेना कुछ कठिन काम न था। बस, यही सब सोचसाचकर फिर तो मैंने स्त्रियों के स्वाभाविक अस्त्रशस्त्रों की थोड़ी सी वर्षा करनी प्रारम्भ की और बहुत ही धीरे से, जिसमें कि वे तीनों न सुन सकें, काल्हू के कान में इतना ही कहा कि,—"अब जरा इन तीनों को यहांसे हटा दो, तो मैं तुमसे कुछ कहूं।"

यद्यपि मेरी बातें तो वे तीनों न सुन सके, पर, "काल्हू के कान में जो मैंने कुछ कहा," इसे देखकर वे तीनों के तीनों काल्हू से बार बार यों पूछने लगे कि, "दुलारी ने तुमसे अभी हौले हौले क्या कहा? देखो भाई, जो कुछ इसने तुम्हारे कान में कहा हो, उसे हमलोगों पर भी प्रगट करदो; क्योंकि हम चार यारों में अब परस्पर कुछ भी छिपाव न रहना चाहिए।"

काल्हू ने उन तीनों की बातें सुनकर उन (तीनों) से एक ऐसी विचित्र बात कही कि जिसे सुनकर मैं तो दङ्ग रह गई!

क्योंकि यह बात मैंने काल्लू से नहीं कही थी, जो उस (काल्लू) ने अपने तीनो साथियों से कही ।

तो, उसने अपने साथियों से क्या कहा ? एक अद्भुत बात कही! वह बात यह थी—काल्लू ने अपने तीनों साथियों से यों कहा कि,—"नहीं, दोस्तों! मैं तुमलोगों से कुछ भी नहीं छिपाना चाहता। लो, सुनो,—दुलारी यह कहती है कि,'उस पच्छिम ओर वाले रसोईघर में चूल्हे के नीचे एक बटुआ गड़ा हुआ है, जिसमें दो हजार रुपए हैं। सो, उन रुपयों को भी निकाल कर अपने साथ लेलेना चाहिए।"

बस, महाशय! वह बात यही थी, जिसे अपने मन से गढ़कर काल्लू ने उन तीनों से कहा था और जिसे सुनकर मैं बहुत ही चकपकाई थी कि,'वाह, इस (काल्लू) ने अपने तीनों साथियों को यहांसे हटाने का यह अच्छा ढंग निकाला!' पर इस युक्ति—बिलकुल बेजड़ युक्ति का परिणाम क्या होगा, इसे मैं उस समय नहीं समझ सकी थी।

सो, जब उन तीनों ने काल्लू के मुह से दो हजार रुपए की बात सुनी, तब वे मारे आनन्द के खूब ही उछलने कूदने लगे। यह देखकर काल्लू उठा और बाहर से एक दूसरा दीया लाकर और उसे बालकर आले पर रखने के बाद अपने उन तीनो साथियों के साथ मेरी कोठरी से निकल कर रसोई घर की ओर चला गया। कुछ ही क्षण के बाद मेरे कानो में फरसे के चलाए जाने की आवाज पहुंची, जिसे सुनते ही मैंने यह समझ लिया कि रसोई घर के चूल्हें के नीचे की धर्ती खोदी जा रही है!

दसवां परिच्छेद ।

माया !

" भ्रूचातुर्याकुञ्चिताक्षाः कटाक्षाः,
स्निग्धा वाचो लज्जिताश्चैव हासाः ।
लीलामन्दं प्रस्थितं च स्थितं च,
स्त्रीणामेतद्भूषणं चायुधं च ॥ "
(भर्तृहरिः)

बस, इतने ही में काल्हू आ पहुंचा और मेरी खाट के पास बैठ, हंसकर यों कहने लगा,—"क्यों प्यारी दुलारी ! मैंने कैसे अच्छे ढङ्ग से अपने साथियों को यहांसे हटाया !"

मैं बोली,—"किन्तु इस झूठ का नतीजा क्या होगा ? "

वह कहने लगा,—" यह बात पीछे सोची जायगी । इस बखत तो उन सभों को यहांसे टाल दिया न ! जो यह बात मुझे न सूझती, तो वे तीनों भला, यहांसे कभी टलनेवाले थे ! अच्छा, अब तुम्हें जो कुछ कहना-सुनना हो, उसे झटपट कह डालो; क्योंकि रात बीती चली जा रही है ।"

यह सुनकर मैंने उसकी ओर हंसकर देखा और स्त्रियों के स्वाभाविक अस्त्र-शस्त्रों का कुछ थोड़ा सा प्रयोग करके उससे यों कहा,—"काल्हू, यद्यपि तुम पर अभी तक मैंने यह बात प्रगट नहीं की थी, क्योंकि मेरे माता पिता जीते थे, पर यह तुम, सच जानो कि मैं भी जी ही जी में तुम्हें चाहने लगी थी । "

यों कहकर मैंने फिर जरा सा मुस्कुरा दिया, जिससे वह मुंआ बिल्कुल घायल होगया और मेरी ओर बड़ी बेचैनी के साथ देखकर यों कहने लगा,—"एँ, यह क्या तुम सच कह रही हो ? "

मैंने खांस कर कहा,—"हां, बिल्कुल ही सच ! ! ! "

वह कहने लगा,—"तब तो यह बड़ी ही खुशी की बात हुई !"

मैं बोली,—"लेकिन मेरे लिये तो यह बड़ी दुखदाई बात हुई !"

वह कहने लगा,—"तुम्हारी इस बात का क्या मतलब है ?"

मैं बोली,—"मतलब तो बिल्कुल साफ ही साफ है। अर्थात मैं केवल तुमको चाहती हूं,इसलिये फकत तुम्हारी ही होकर रहना भी पसन्द करती हूं। सो, यदि तुम भी मुझे सच्चे जी से प्यार करते होवो, तो मुझे तुम अपनी जोरू की तरह रक्खो, पंचायती रण्डी की भांति न रक्खो, क्योंकि मैं एक तुम्हारी ही होकर तो रह सकूंगी, पर तुम्हारे उन तीन तोन यारों की टहल-चाकरी मुझसे कभी भी नहीं होने की।"

मेरी ऐसी विचित्र बात को सुनकर वह मूरख उछल पड़ा और बोला,—"हाय, प्यारी दुलारी ! तो तुमने अबतक यह अपने जी की बात मुझपर क्यों नहीं जाहिर की थी ! अच्छा, कुछ पर्वा नहीं, तुम्हारा सारा मतलब मैं अब भली भांति समझ गया। अब तुम जरा न घबराओ, क्योंकि अब तुमको सिर्फ मेरी घरवाली बनने के अलावे और किसी गैर साले की परछाईं भी नहीं छूनी पड़ेगी। बस, अब तुम कोई फिकर न करो और थोड़ी देर तक योंही पड़ी रहो। मैं अभी लौटकर आता हूं और तुम्हें यहांसे निकाल कर लेचलता हूं।"

यों कहकर काल्‌ू उठा और उस कोठरी के बाहर जाने लगा। यह देखकर मैंने उससे पूछा,—"तुम अब चले कहां ?"

वह कहने लगा,—"मैं उन तीनों को विदा करने जाता हूं।"

यह सुनकर मैंने बड़े अचरज के साथ उससे पूछा,—"एं, यह तुम क्या कहते हो ? क्या वे तीनों तुम्हारे कहने से मुझे तुम्हारे हाथ में सौंप कर यहांसे चुपचाप चले जायंगे ?"

वह कहने लगा,—"उन सालों के सात पुरखे जायंगे, फिर भला उनकी तो बिसात ही क्या है !"

यह कहकर वह अपनी तलवार लिये हुए जब उस कोठरी के बाहर जाने लगा, तो मैंने फिर कहा,—"मेरे हाथ-पैर के बन्धन

तो खोलते जाओ ? "

यह सुन और यों कहकर वह तेजी के साथ मेरे सामने से चल दिया कि,—"नहीं, अभी ठहरो। मैं जब इन सालों को बिदा करके लौटूंगा, तब तुम्हारे हाथ-पैर खोलूंगा, क्योंकि अगर अभी मैं तुम्हारे बन्धन खोल दूंगा, तो शायद तुम मुझे अंगूठा दिखाकर कहीं खिसक दोगी। "

बस, वह तो चला गया, पर मैं मन ही मन यों सोचने लगी कि यह कंबख्त कालू अपने उन तीनो यारों को कैसे यहांसे बिदा करेगा ! और साथ ही यह भी मैं विचारने लगी कि इस जबरदस्त कालू से मैं क्योंकर अपना पिण्ड छुड़ाऊंगी ! मैंने तो मन ही मन यह सोचकर कालू से वह बात कही थी कि, 'यदि वह थोड़ी देर के लिये मेरे पास अकेले में रह जाय तो मैं उसे फुसलाकर अपने हाथ-पैर खुलवा लूं और तब मौका पाकर यहांसे भागूं.' पर मेरा मन-चीता न होसका और मैं उसी खाट पर पड़ी रही। पड़ी तो रही, पर पड़ी पड़ी भी मैं अपने हाथ में बंधे हुए चीथड़े को दांतों से नोचने लगी। इस काम में मुझे परमेश्वर ने बड़ी सहायता दी; क्योंकि हाथ के बन्धन को मैंने दांतों से काट काट कर खोल डाला और तब मैं उठकर खाट पर बैठ गई। ठीक उसी समय मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो रसोईघर में कुछ लड़ाई-झगड़ा होरहा है ! अस्तु; मैं फिर उधर ध्यान न देकर जल्दी जल्दी अपने पैर का बन्धन खोलने लगी। परन्तु इसमें मुझे कुछ देर लगी, क्योंकि वह बंधन रस्सी का था और बड़ी पोढ़ीगांठ लगाई गई थी। किन्तु फिर भी मुझसे जहांतक होसका, मैंने अपने पैरों का बन्धन भी खोल डाला और तब खाट के नीचे उतर कर अपने कुलदेवता को प्रणाम किया।

ग्यारहवां परिच्छेद।

दुःख पर दुःख।

" एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं,
गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य।
तावद् द्वितीयं समुपस्थितं मे,
छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥ "

(नीतिसुधाकरे)

फिर वहांसे भागने की मैंने ठहराई। सो, झटपट एक मोटी धोती और एक रूईदार सलूका पहिर कर मैंने एक ऊनी सफेद चादर ओढ़ ली और मन ही मन भगवान और भगवती को प्रणाम करके उस कोठरी से मैं बाहर निकली।

उस समय भागने की धुन में मैं ऐसी लौलीन होरही थी कि मुझे इस बात का मुतलक खयाल नहीं था कि, 'इसी घर में हिरवा मरा पड़ा है!' अस्तु, फिर मैं जल्दी जल्दी पैर बढ़ाती हुई सदर दरवाजे की ओर जाने लगी थी कि इतने ही में कालू बड़े जोर से चीख मार उठा और मुझे ऐसा जान पड़ा कि मानो " धम्म " से कोई चीज रसोईघर में गिरी हो!

ऐसी आहट पाकर मैं तेजी के साथ सदर दरवाजे की ओर भागी थी कि बड़े जोर से कराह कर कालू ने मुझे पुकारा,—"ओ दुलारी, तेरे तीनों चाहनेवालों को मारकर मैं भी नब्बू की तलवार से अधमुआं होकर गिर गया हूं! आह, तू जल्द आ और मुझे थोड़ा सा पानी दे। हाय, पानी! अब दम निकला! दुलारी! पानी!!!"

कालू की ऐसी विचित्र बात के सुनते ही मेरे पैर रुक गए और बड़े जोर से मेरा हिया कांप उठा! मैं अपना माथा पकड़ कर जहां खड़ी थी, वहीं बैठ गई और कालू मुझे बार बार पुकारने और "पानी-पानी" चिल्लाने लगा। आखिर, मैं किसी किसी तरह अपना

कलेजा पोढ़ा करके उठी और एक मिट्टी की जल-भरी गगरी उठाकर रसोई-घर में पहुंची।

वहां जाकर मैंने क्या देखा कि, 'धाना और परसा के तो सिर धड़ से अलग होगए हैं, और नब्बू के कलेजे में तलवार घुसेड़ी हुई है! सारी कोठरी में खून बह रहा है और एक ओर काल्लू भी घायल होकर पड़ा पड़ा कराह रहा है!!!'

यह सब हत्याकाण्ड देखकर उस समय मेरे चित्त की क्या अवस्था हुई होगी, इसे तो केवल नारायण ही जान सकते हैं! इसलिये उसका बखान न करके मैं अब आगे का हाल कहती हूँ।

मुझे देखते ही काल्लू ने कहा,—"दुलारी, जल्दी मुझे पानी पिलाओ।"

बस, जब यह बात मेरे कान में पड़ी, तब मानों सोते से मैं जागी और मैंने नजर गड़ाकर क्या देखा कि, 'काल्लू के कंधे को तलवार ने दूर तक काट दिया है और वह धर्त्ती में पड़ा पड़ा तड़प रहा है!'

मैं उसकी उस अवस्था को देखकर यह बात भली भांति समझ गई कि, 'अब यह भी थोड़ी ही देर का पाहुना है।' अस्तु, फिर तो मैंने हाथ में पानी लेकर उसके मुहं में धीरे धीरे डाला, जिसे वह बड़े कष्ट से पी गया।

थोड़ा सा पानी पी कर जब वह कुछ स्वस्थ हुआ, तब मेरी ओर देखकर यों कहने लगा,—"दुलारी, तुम्हारी खातिर मैंने अपने तीनों साथियों को मार डाला, पर नब्बू साला मरते मरते मुझे भी आखिर मार ही गया! अब मैं चलता हूं, इसलिये मेरे अपराधों को तुम क्षमा करना। तुम यहांसे अब अपनी जान लेकर तुरन्त कहीं भाग जाना और पुलिस के हाथोंमें से अपने तईं खूब बचाना। अगर तुम कहीं भाग न गईं तो जरूर पकड़ी जाओगी और इन पांच-पांच खूनों के कसूर में फांसी पड़ोगी।"

यों कहकर उसने फिर थोड़ा सा पानी पीया और तब मैंने उससे यों कहा,—" कालू, यह तुमने क्या कर डाला ? "

वह कहने लगा,—"तो आखिर, मैं उन सभों को यहांसे टालता कैसे ? वे सब भला यहांसे कभी टसकनेवाले थे ! मैंने तो यह सोचा था कि उन तीनों को मार कर तुम्हें यहांसे भगा ले चलूंगा, पर मेरे मन की मन ही में रही और मैं भी अब चलता हूं। हाय, तुम ब्राह्मण की लड़की हो और मैं तुम्हारा टहलुआ हूं। फिर भी मैंने तुम पर अपनी नीयत बिगाड़ी और पूरी नमकहरामी की ! अब यदि तुम अपनी उदारता से मुझे क्षमा न करोगी तो मैं नरक में भी सुख से न रह सकूंगा। इसलिये दुलारी, तुम मुझे क्षमा करो; क्योंकि मैं अब चलने ही वाला हूं। क्षमा करो, दुलारी ! तुम मेरी मां-बहन हो, इसलिये मुझ पापी को अब तुम क्षमा करो।"

यह सुनकर मैंने कहा,—" कालू, तुमने काम तो बड़ा खोटा किया है; पर अब तुम मर रहे हो, इसलिये मैं तुम्हें क्षमा करती हूं। पर यह तो बतलाओ कि तुमने अकेले तीन तीन आदमियों को कैसे मारा ?"

वह कहने लगा,—" रसोई-घर में आकर धाना तो चूल्हे के नीचे की धरती खोदने लगा, परसा खुदी हुई मिट्टी हटाने लगा और नब्बू रोशनी दिखलाने लगा था। बस, तुम्हारे पास से आकर मैंने धाना और परसा को तो चट-पट काट डाला, पर नब्बू यह हाल देखकर मुझसे लड़ने लगा। उसने अपने हाथ का पलीता दीवार के छेद में खोंस दिया और मुझ पर वार किया ! उसने मेरे कन्धे पर यह बड़ी भारी चोट पहुंचाई, पर गिरने के पहिले मैंने भी उसके कलेजे में अपनी तलवार आखिर घुसेड़ ही दी। बस, इसके बाद पहिले नब्बू ने धर्त्ती सूंघी और उसके बाद मैं धीरे धीरे लेट गया। बस, यही तो बात है, जो तुम्हें सुना दी गई। पानी ! पानी !! ओ, दुलारी ! पानी ! पानी ! ! पानी ! ! ! "

यह सुनकर मैंने फिर उसके मुहं में पानी डाला, पर अबकी बेर वह उसके गले के नीचे न उतरा और बाहर निकल कर बह गया। इतने ही में कालू ने दो-चार बार हाथ-पैर हिलाए, कई हिचकियां लीं और दम तोड़ दिया !!!

यह लख कर फिर मैं उस कोठरी में तनिक भी न ठहरी और बाहर निकल आई।

मेरे पैर खून से रंग गए थे, इसलिए पहिले तो मैंने पैरों को खूब धोया, इसके बाद इस बात पर भली भांति विचार किया कि, 'अब मुझे क्या करना चाहिए।'

बहुत कुछ सोच-विचार करने के बाद मैंने यही निश्चय किया कि, 'यहांसे भागकर मैं कहां जाऊंगी और किस जगह छिप कर रहूंगी, क्योंकि मुझे कौन सरन देगा ! इसके अलावे, भागने पर इन पांच-पांच खूनों की अपराधिनी मुझे ही बनना पड़ेगा। इसलिये अब मुझे यही करना चाहिए कि सारी लाज-शरम छोड़कर मैं स्वयं थाने पर चलूं और इन हत्याओं की रिपोर्ट लिखाऊं। इसमें फिर जो कुछ भी हो, पर मुझे ऐसे अवसर पर न तो कहीं भागना ही चाहिए और न छिप कर बैठ ही रहना चाहिए।'

बस, यह सोच कर मैं तुरन्त अपने घरसे बाहर हुई और अपने गांव से तीन-चार कोस दूर एक दूसरे गांव के थाने पर जाने का मैंने पक्का इरादा करलिया। क्योंकि मेरे गांव पर जो थाना था, दीवाली पर आग लग जाने से वह जल गया था और उसके लिये दूसरा झोंपड़ा अभी नहीं बना था। इसलिये इस गांव पर की वारदात की रिपोर्ट पास के उसी दूसरे गांव पर लिखाई जाती थी। बस, उसी गांव पर जाने का मैंने निश्चय किया।



बारहवां परिच्छेद ।

हवालात ।

" अवश्यभव्येष्वनवग्रहग्रहा,
यया दिशा धावति वेधसः स्पृहा ।
तृणेन वात्येन तयानुगम्यते,
जनस्य चित्तेन भृशावशात्मना ॥ "
(श्रीहर्षः)

बाहर आने पर मैंने क्या देखा कि मेरी गाड़ी में मेरे ही दो बैल जुते हुए हैं ! वे मुझे देखते ही मारे आनन्द के गर्दन हिलाने लगे ! मैंने उन दोनों बैलों की पीठ थपथपाई और गाड़ी पर सवार हो गई। फिर रास अपने हाथ में लेकर मैंने एक ओर को कूच किया ।

जिस समय मैंने गाड़ी हांकी थी उस समय पौ फट चुकी थी और झुरपुटा हो आया था। बस, उसी उषःकाल में मैंने यात्रा की और आध घन्टे में अपने गांव के बाहर मैं जा पहुंची । उस समय गांव में चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था और रास्ते में मुझे कोई भी नहीं मिला था। यह देख कर मैं गंगा-किनारे पहुंची, फिर गाड़ी से उतर कर मैंने गंगास्नान किया और तीन अंजुल जल अपने पिता के लिये दिया। फिर मैं एक घन्टे तक वहीं बैठी हुई अपने पिता के लिये खूब रोई। इतने में जब मेरी वह गीली धोती सूख गई, तब मैंने वह गाड़ी दूसरे गांव की ओर बढ़ाई ।

जिधर मैंने गाड़ी बढ़ाई थी, वह गांव मेरे गांव से तीन चार कोस दूर था और उसमें एक पुलिस की चौकी थी। उस चौकी पर मैं जाया चाहती थी। सो, दस बजते बजते मैं उस चौकी पर पहुंच गई और गाड़ी से उतर कर एक 'गोंड़इत' (गांव के चौकीदार) से यों पूछने लगी कि,—"थानेदार कहां हैं ?"

मेरी बात सुन और मुझे सिर से पैर तक खूब अच्छी तरह घूर कर उस बदजात चौकीदार ने मुस्कुराकर यों कहा,—"अय जानसाहिबा! तुम किस गांव को उजाड़ कर इस वीराने को आबाद करने आई हो?"

उस हरामजादे की ऐसी बात-चीत सुनकर यह मैं समझ गई कि यह मुंआ बड़ा पाजी मुसलमान है। पर खैर, उसकी बातें अनसुनी करके मैं सामनेवाले एक छोटे से छप्परदार कोठे के अन्दर घुस गई और वहां जाकर मैंने क्या देखा कि, 'एक तख्तेपोश के ऊपर दो-तीन तकियों का ढासना लगाए हुए एक नौजवान मुसलमान बैठा हुआ हुक्का गुड़गुड़ा रहा है!"

उसे देखकर मैंने उससे यों पूछा,—"इस थाने के अफसर आप ही हैं?"

मेरी बोली सुनकर उस मियां की मानो पिनक दूर हुई और उसने मेरी ओर देख और दो-चार जम्हाई लेकर हंस दिया! इतने में वह गोंड़इत भी उसी कोठे में आगया, जिसके साथ मेरी अभी बात-चीत हुई थी।

सो, उसने थानेदार की ओर देख और खूब खिलखिला कर यों कहा,—"लीजिए, जनाब! आप भी कैसे किस्मतवर बशर हैं कि सुबह-सुबह यह कोहकाफ़ की हूर आप ही आप आप के पास आ टपकी!"

उस मुए चौकीदार की वैसी बात सुनकर थानेदार खूब कहकहा लगाकर हंस पड़ा और बोला,—"अजी क्यां, तो इसमें ताज्जुब की क्या बात हुई! बकौल शख्से कि, 'शक्करखोरे को शक्कर और मूंजी साले को टक्कर मिला ही करती हैं।' उसी तरह मुझे भी आज यह मिसरी की डली दस्तयाब हुई!"

यों कहकर थानेदार ने मेरी ओर बुरी तरह आंखें मटकाकर यों कहा,—"तुम कहांसे आरही हो, दिलरुबा!"

मैं इन शैतानों, यानी चौकीदार और थानेदार के बर्ताव को देखकर मन ही मन जल-भुन-कर खाक होगई थी, पर फिर भी बेमौका समझ कर अपना क्रोध भीतर ही भीतर पी गई और थानेदार से यों कहने लगी,—" मेरे घर में आज की रात पांच पांच खून होगए हैं, इन्हीं की रिपोर्ट लिखाने में खुद ही हाजिर हुई हूं। इसलिये आप कृपा कर मेरा बयान लिख लीजिए और मुझे जिले की कचहरी के हाकिम के पास लेचलिए। "

मेरी बात सुनकर थानेदार खूब ठठाकर हंसा और सीधा बैठ कर यों कहने लगा,—" वल्लाह, तुमने तो जानसाहिबा! आते ही मजाक शुरू कर दिया! या रब! ऐसा तो मैंने न कभी देखा और न सुना ही कि खुद खूनी थाने पर हाजिर होकर अपने फेल की रिपोर्ट लिखाता हो! इसलिये, प्यारीजान! तुम मुझसे दिल्लगी-बाजी न करो और जिस मतलब से तुम मेरे पास आई होवो, उसे बिला-तकल्लुफ मुफस्सिल बयान कर जाओ। आओ, मेरे पास इसी तख्तेपोश पर आकर बैठ जाओ। "

उस निगोड़े थानेदार का ऐसा कमीनापन देखकर मैं बहुत ही झल्लाई, पर फिर भी मैंने लोहू का घूंट पीकर उससे यों कहा,— "साहब, मैं एक भले घर की लड़की हूं, और आज की रात मेरे घर में पांच पांच खून होगए हैं। उसी की रिपोर्ट लिखाने मैं खुद यहां हाजिर हुई हूं। इसलिये पहिले आप मेरा इजहार लिख लें, फिर मेरे घर जाकर उन पांचों लाशों का मुलाहिजा करें। बस, अब मुझे छुट्टी दें, तो मैं भी वहां पहुंच जाऊं।

मेरी बात सुनकर उन चौकीदार और थानेदार साहबों के होशोहवास दुरुस्त होगए और थानेदार ने मेरी ओर तिरछी चितवन से तककर यों कहा,—"वल्लाह, तुम्हारी तो सभी बातें एक अजीबोगरीब पहेली नजर आती हैं! अजी बी! कहीं भले घर की लड़कियां भी खून-खराबा किया करती हैं? "

मैं बोली,—"यह किसने कहा कि मैंने ये खून किये हैं? आप पहिले मेरा बयान लिख लें, फिर उस खून की जांच करें और मुझे हुकुम दें तो मैं अपने घर वापस जाऊं।"

इसपर उस चौकीदार ने कहा,—"थानेदार साहब, यह तो बड़ा मजेदार मामला नजर आता है!"

यह सुन और मेरी तरफ़ बुरे बुरे इशारे करके थानेदार ने यों जबाब दिया,—"वाकई, मियां हींगन! यह मामला, दर-असल बड़ा मजेदार है!"

यों कहकर उस पाजी ने मेरी ओर बहुत ही बुरी तरह घूरकर और हंसकर कहा,—"अच्छा, जानी! तुम्हारा नाम क्या है?"

उस बदमाश की बदमाशियों पर खयाल न कर और नीची आंखें करके मैंने यों कहा,—"मेरा नाम दुलारी है।"

यह सुनकर उसने एक कहकहा लगाया और यों कहा,—"वल्लाह, प्यारी! तुम्हारा नाम तो निहायत मौजूं है! वाकई, तुम सिर्फ 'दुलारी' ही नहीं हो, बलिक 'मेरी दुलारी' हो! क्यों? अब आया, तुम्हारी समझ के अन्दर!!!"

उस मुए की ऐसी बातें सुनकर मैं बहुत ही कुड़बुड़ाई, किन्तु लाचार थी। हां, इतना मैंने मन ही मन जरूर समझ लिया था कि यहां आकर मैंने अच्छा काम नहीं किया।

मैं मन ही मन इसी बात पर गौर कर रही थी कि उसने मुझसे फिर यों कहा,—"लो, सुनो और मेरी ओर देखकर उस खून के बारे का सारा हाल मुफस्सिल कह जाओ।"

यह सुनकर मैंने उस खून का सारा हाल कह सुनाया।

यह सुनकर थानेदार ने उठकर मुझे तो जबरदस्ती एक कोठरी में बन्द करदिया और दो चौकीदारों को मेरे पहरे पर मुकर्रर करके हींगन चौकीदार के साथ मेरी ही गाड़ी पर चढ़कर मेरे गांव की तरफ़ कूच किया।

तेरहवां परिच्छेद ।

दो सज्जन ।

" दोषजातमवधीर्य मानसे,
धारयन्ति गुणमेव सज्जनाः ।
क्षारभावमपनीय गृह्णते,
वारिधेः सलिलमेव वारिदाः ॥ "
(सज्जनविलासे)

बस बदज़ात थानेदार के जाने पर वे दोनों चौकीदार मुझसे बातचीत करने लगे। वे दोनों बेचारे बड़े भले आदमी थे। उनमें से एक (दियानतहुसेन) तो मुसलमान थे और दूसरे (रामदयाल) ब्राह्मण। बातों ही बातों में उन दोनों को मैंने अपनी सारी 'रामकहानी' सुना दी, जिसे सुन कर वे दोनों बेचारे बहुत पछताने लगे और यों कहने लगे कि,—" दुलारी, जो खून तुम्हारे घर में होगए हैं, उनके कसूर में आश्चर्य नहीं कि तुम्हीं सजा पा जाओ और वह कसूर तुम्हारे ही गले मढ़ा जाय; पर कुछ पर्वा नहीं; जन्म लेकर कोई बार बार नहीं मरता। तुम्हारा धर्म जो नारायण ने बचा दिया, उसके मुकाबिले में फांसी की तख्ती कोई चीज़ ही नहीं है। यदि धर्म और परमेश्वर कोई चीज हैं, तो वे दोनों तुम्हें अच्छी गति देंगे और परलोक या दूसरे जन्म में तुम सुख पाओगी। फिर यह भी बात है कि यदि तुमने सच-मुच खून न किए होंगे, तो भगवान तुम्हें बचा भी सकते हैं। "

आहा ! मैं उन दोनों भले चौकीदारों की हमदर्दी से भरी और सच्ची बातें सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुई और कहने लगी,—" हां, भाइयो ! मैं मरने से नहीं डरती, इसीलिये तो आप ही आप यहां आकर हाजिर होगई हूं; पर यह खून मैंने नहीं किए हैं। "

यह सुनकर दियानतहुसेन ने कहा,—" पर जो तुम यहां न

आकर गंगा में डूब मरतीं, तो कहीं अच्छा होता; क्योंकि जिस धरम को बचाकर तुम यहां आई हो, वही धरम तुम यहां कभी न बचा सकोगी, क्योंकि यह थानेदार ऐसा कमीना है कि तुम्हें अछूती कभी न छोड़ेगा और तुम्हारी आबरू बिगाड़ कर तब दम लेगा। इस शैतान ने अबतक न जाने कितनी औरतों की इज्जत हुर्मत बिगाड़ डाली है और बराबर बिगाड़ता ही रहता है। इस गांव के लोगों का नाकों में दम आ गया है, पर बेचारे लाचार होरहे है, क्योंकि इस नालायक की किसी तरह यहांसे बदली भी नहीं होती। इसका साथी हींगन भी एक ही शैतान है और इन दोनों बदमाशों ने इस गांव में तहलका मचा दिया है। मेरी सर्कार बहादुर तो अपनी रियाया की भलाई के वास्ते पुलिस का मुहकमा खोल बैठी हैं, पर इस मुहकमे में बाजे बाजे ऐसे कमीनें घुस आते हैं कि जिनसे रियाया को उलटा और परेशान होना पड़ता है।"

बेचारे दियानतहुसेन की बातें सुनकर मैं मन ही मन बहुत ही डरी कि, 'हाय, अब मैं किस बला में आफ़सी!' अस्तु, मैंने उनसे यों कहा,—"भाईसाहब! तो यहां मैं क्या करूंगी? हाय, क्या आपलोग मुझ अनाथ लड़की को नहीं उबार सकते?"

मेरी बात सुनकर रामदयालमिश्र ने दियानतहुसेन से कहा,—"भाई, यह लड़की साक्षात् सिंहवाहिनी दुर्गा है; सो, यह अपने सतीत्व के बल से आप अपना धर्म बचा सकेगी। रही हमलोगों की बात, सो भला हमलोग इसकी कौन सी सहायता कर सकते हैं?"

यह सुनकर दियानतहुसेन ने कहा,—"हां, भाईसाहब,! यह तो ठीक बात है, क्योंकि हमलोग एक महज़ मामूली चौकीदार हैं। ऐसी हालत में हमलोग एक कैदी औरत को उस ऐयाश और बदकार अबदुल्ला थानेदार से क्योंकर बचा सकते हैं। हां, अगर यह औरत कैद न होती और योंहीं यहां आ फंसी होती, तो हमलोग

इसे चुपचाप भगा दे सकते थे; पर जब कि यह नौजवान लड़की खुद यहां आकर फंस गई है, तब भला इसे हमलोग कैसे छोड़ सकते हैं! भाई, अपनी अपनी जान सभी को प्यारी होती है, इसलिये इसे हमलोग कैसे यहांसे भगा दें।"

चौकीदार दियानतहुसेन की बात सुनकर रामदयाल ने कहा,—"हां,भाई! ये सब बातें तो तुम ठीक कह रहे हो।"

बाद इसके, मेरी तरफ़ घूमकर उन्होंने मुझसे यों कहा,—"बहिन दुलारी, अब तुम केवल भगवती का ध्यान करो; क्योंकि उसके अलावे, अबदुल्ला थानेदार से तुमको कोई भी नहीं बचा सकता।"

यह सुनकर मैंने यों कहा,—"सुनो भाइयों, मैं यहांसे भागना नहीं चाहती और न यही चाहती हूं कि तुमलोग मुझे यहांसे भगा कर खुद आफत में फंसो। अजी,जो मुझे भागना ही होता, तो मैं आप ही आप यहां आती ही क्यों? सो मैं, भागना नहीं चाहती और न फांसी से ही डरती हूं। परन्तु हां, मैं अपने धर्म के लिये अवश्य घबरा रही हूं कि कहीं मेरा वही अमूल्य धन (सतीत्व) न जाता रहे। हाय, जिस सतीत्व की रक्षा के लिये मैं यहां आई, वही सतीत्व थानेदार अबदुल्ला के हाथों गंवाना पड़ेगा! अच्छा, आपलोग मेरे लिये कोई चिन्ता न करें, क्योंकि अब मैंने यह बात भली भांति समझ ली कि भगवती की जो इच्छा होगी, वही होगा।"

यों कहकर मैं फूट-फूट-कर रोने लगी और रामदयाल तथा दियानतहुसेन मुझे ढाढ़स देने लगे। घंटे डेढ़ घंटे के पीछे मैं कुछ शान्त हुई और रामदयाल और दियानतहुसेन के साथ थानेदार अबदुल्ला की चाल-चलन के विषय में बातचीत करने लगी। उन दोनों ने उसके अत्याचार की बहुतेरी कहानियां मुझे सुनाईं, जिन्हें मैंने खूब मन लगाकर सुना।

सब कुछ सुन लेने पर मैंने उन दोनों की ओर देखकर यों कहा,—"तो, क्यों भाइयो! इस गांव के लोग ऐसे बदमाश थानेदार की रिपोर्ट सरकार में क्यों नहीं करते।"

इसपर उन दोनों ने पारी पारी से यों कहा,—"दुलारी! भला, बेचारे गांव के गरीब आदमियों में इतनी हिम्मत कहां है।"

बस, इतनी बातचीत होने के बाद रामदयाल मिश्र एक लोटा भर कर दूध ले आए और मुझसे बोले,—" यह चंडाल थानेदार तुम्हें खाने-पीने के लिये कुछ भी न देगा। इसलिए यह गाय का दूध मैं लाया हूं, इसे तुम पी लो।"

यह सुन कर मैंने बहुत कुछ नाहीं-नुकर किया पर उन्होंने इतना आग्रह किया कि फिर मैं ज़ादे हठ न कर सकी और उस लोटे में भरे हुए सारे दूध को गटर-गटर पी गई। मैंने उस कोठरी के जंगले के पास आकर अपने मुंह से अंजुली लगाई और बाहर से एक पत्ते में धार बांध कर रामदयाल ने मुझे दूध पिलाना प्रारम्भ किया। यों जब मैं सब दूध पी गई, तब उन्होंने कुएं का ताजा पानी लाकर मेरा हाथ-मुहं धुला दिया। फिर वे दोनो घूम घूम कर मेरी कोठरी की चौकसी करने लगे और मैं अपने पिता की शोचनीय मृत्यु और उनका योंहीं बहा दिया जाना स्मरण करके फूट फूट कर रोने लगी।

मुझे वे (दियानतहुसेन और रामदयाल) दोनों बार बार समझाते थे, पर जब नदी का बांध टूट जाता है, तब क्या उसकी धारा का वेग रुक सकता है ?

ख़ैर, इसी तरह मैं घंटों तक रोया की, फिर आप ही आप धर्त्ती में लुढ़क गई और नींद ने मुझे अपनी गोद में सुला लिया। यहां पर इतना और भी समझ लेना चाहिए कि मैं जिस कोठरी में बन्द की गई थी, उसकी धर्त्ती में पुआल बिछ रहा था, इस लिए मुझे कोई कष्ट न हुआ और मैं देर तक बेखबर पड़ी पड़ी सोया की।

इसे चुपचाप भगा दे सकते थे; पर जब कि यह नौजवान लड़की खुद यहां आकर फंस गई है, तब भला इसे हमलोग कैसे छोड़ सकते हैं! भाई, अपनी अपनी जान सभी को प्यारी होती है, इसलिये इसे हमलोग कैसे यहांसे भगा दें।"

चौकीदार दियानतहुसेन की बात सुनकर रामदयाल ने कहा,—"हां,भाई! ये सब बातें तो तुम ठीक कह रहे हो।"

बाद इसके, मेरी तरफ़ घूमकर उन्होंने मुझसे यों कहा,—"बहिन दुलारी, अब तुम केवल भगवती का ध्यान करो; क्योंकि उसके अलावे, अबदुल्ला थानेदार से तुमको कोई भी नहीं बचा सकता।"

यह सुनकर मैंने यों कहा,—"सुनो भाइयों, मैं यहांसे भागना नहीं चाहती और न यही चाहती हूं कि तुमलोग मुझे यहांसे भगा कर खुद आफत में फंसो। अजी,जो मुझे भागना ही होता, तो मैं आप ही आप यहां आती ही क्यों? सो मैं, भागना नहीं चाहती और न फांसी से ही डरती हूं। परन्तु हां, मैं अपने धर्म के लिये अवश्य घबरा रही हूं कि कहीं मेरा वही अमूल्य धन (सतीत्व) न जाता रहे। हाय, जिस सतीत्व की रक्षा के लिये मैं यहां आई, वही सतीत्व थानेदार अबदुल्ला के हाथों गंवाना पड़ेगा! अच्छा, आपलोग मेरे लिये कोई चिन्ता न करें, क्योंकि अब मैंने यह बात भली भांति समझ ली कि भगवती की जो इच्छा होगी, वही होगा।"

यों कहकर मैं फूट-फूट-कर रोने लगी और रामदयाल तथा दियानतहुसेन मुझे ढाढ़स देने लगे। घंटे डेढ़ घंटे के पीछे मैं कुछ शान्त हुई और रामदयाल और दियानतहुसेन के साथ थानेदार अबदुल्ला की चाल-चलन के विषय में बातचीत करने लगी। उन दोनों ने उसके अत्याचार की बहुतेरी कहानियां मुझे सुनाईं, जिन्हें मैंने खूब मन लगाकर सुना।

सब कुछ सुन लेने पर मैंने उन दोनों की ओर देखकर यों कहा,—"तो, क्यों भाइयो! इस गांव के लोग ऐसे बदमाश थानेदार की रिपोर्ट सरकार में क्यों नहीं करते।"

इसपर उन दोनों ने पारी पारी से यों कहा,—"दुलारी! भला, बेचारे गांव के गरीब आदमियों में इतनी हिम्मत कहां है।"

बस, इतनी बातचीत होने के बाद रामदयाल मिश्र एक लोटा भर कर दूध ले आए और मुझसे बोले,—"यह चंडाल थानेदार तुम्हें खाने-पीने के लिये कुछ भी न देगा। इसलिए यह गाय का दूध मैं लाया हूं, इसे तुम पी लो।"

यह सुन कर मैंने बहुत कुछ नाहीं-नुकर किया पर उन्होंने इतना आग्रह किया कि फिर मैं ज़ादे हठ न कर सकी और उस लोटे में भरे हुए सारे दूध को गटर-गटर पी गई। मैंने उस कोठरी के जंगले के पास आकर अपने मुंह से अंजुली लगाई और बाहर से एक पत्ते में धार बांध कर रामदयाल ने मुझे दूध पिलाना प्रारम्भ किया। यों जब मैं सब दूध पी गई, तब उन्होंने कुएं का ताजा पानी लाकर मेरा हाथ-मुहं धुला दिया। फिर वे दोनो घूम घूम कर मेरी कोठरी की चौकसी करने लगे और मैं अपने पिता की शोचनीय मृत्यु और उनका योंहीं बहा दिया जाना स्मरण करके फूट फूट कर रोने लगी।

मुझे वे (दियानतहुसेन और रामदयाल) दोनों बार बार समझाते थे, पर जब नदी का बांध टूट जाता है, तब क्या उसकी धारा का वेग रुक सकता है?

ख़ैर, इसी तरह मैं घंटों तक रोया की, फिर आप ही आप धर्त्ती में लुढ़क गई और नींद ने मुझे अपनी गोद में सुला लिया। यहां पर इतना और भी समझ लेना चाहिए कि मैं जिस कोठरी में बन्द की गई थी, उसकी धर्त्ती में पुआल बिछ रहा था, इस लिए मुझे कोई कष्ट न हुआ और मैं देर तक बेखबर पड़ी पड़ी सोया की।

चौदहवां परिच्छेद ।

दैवी विचित्रा गतिः !

" कान्तं वक्ति कपोतिकाकुलतया नाथान्तकालोऽधुना,
व्याधोऽधो धृतचापसज्जितशरः श्येनः परिभ्राम्यति ॥
इत्थं सत्यहिना स दष्ट इषुणा श्येनोऽपि तेनाहत-
स्तूर्णं तौ तु हिमालयं प्रति गतौ दैवी विचित्रा गतिः ॥"
(नीतिरत्नावली)

मेरे कान में ऐसी भनक पड़ी कि मानो मुझे कोई पुकार रहा है ! ऐसा जान कर मैं बठ बैठी और आंखें मल मल और जम्हाई ले ले कर नींद की खुमारी दूर करने लगी। मुझे जगी हुई जान कर रामदयाल ने धीरे से मुझसे यों कहा,—"बस, खबरदार हो जाओ । थानेदार अबदुल्ला लौट आया है और अब वह कदाचित तुमको अपने पास बुलावेगा ।"

यह सुन कर मैंने उनसे पूछा,—"ओहो ! यह तो खासी रात हो आई ! मैं बहुत जादे सोई ।"

उन्होंने कहा,—" हां, तुम खूब सोईं ! अब रात के ग्यारह बजने का समय है ! दस बजे अबदुल्ला और हींगन लौट कर यहां आगए हैं और खाना-खाना खा कर अब दोनो उसी कोठरी में बैठे हुए शराब पी रहे हैं। कदाचित अब तुम बुलाई जाओगी, क्योंकि ऐसी भनक मेरे कान में अभी पड़ी है। इसलिये अब तुम भगवती दुर्गा को स्मरण करो और खबरदार होजाओ। हमलोगों को थानेदार ने यह हुक्म दिया है कि,—" तुम-सब अपनी कोठरी में चले जाना और बिना बुलाए न आना ।"

रामदयाल की बातें सुन कर एक बेर तो मैं बहुत ही डरी और कांपने लगी, पर फिर मैंने भगवती का स्मरण करके अपने जी को पोढ़ा किया ।

बस, इतने ही में हाथ में लालटेन लिये हुए वही हींगन चौकीदार मेरी कोठरी के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ और रामदयाल को बिदा करके ताला खोलते खोलते मुझसे यों कहने लगा,—" चलो, बी ! तुमको थानेदार साहब बुला रहे हैं। खून तो तुमने वाकई पांच जरूर किए हैं, लेकिन कुछ पर्वा नहीं। अगर इस वक्त तुम थानेदार की और मेरी भी दिली आरजू पूरी कर दोगी, तो हमलोग चुपचाप इसी रात को तुम्हें यहांसे भगा देंगे। फिर जहां तुम्हारा जी चाहे, वहां चली जाना; लेकिन जबतक इस खून का हंगामा न मिट ले, तबतक अपने तईं किसी पोशीदा जगह में खूब छिपाए रहना। मगर जो तुमको कोई छिपने की माकूल जगह न दिखलाई दे, तो वैसा कहो; क्योंकि वैसी हालत में खुद मैं तुम्हें अपने साथ लेकर कलकत्ता या बम्बई भाग चलूंगा और फिर किसी साले के हाथ न आऊंगा। बस, तब तुम मेरी बीबी बनकर रहना और मैं तुम्हारा खाविन्द बनकर रहूँगा।"

उस निगोड़े और कलमुंहे मियां हींगन की ऐसी गन्दी बातें सुनकर मेरे तलुवे से चोटी तक आग सी लग गई, किन्तु बेमौका समझकर मैं उस क्रोध को मनही मन दबा गई और स्त्रियों की स्वाभाविक माया का कुछ थोड़ा सा विस्तार करके तुरन्त यों कहने लगी,—"मियांजी ! तुमने जो कुछ मुझसे अभी कहा है, उसे मैं मंजूर करती हूं; पर जब कि तुम मुझे अपनी बीबी बनाया चाहते हो, तो फिर अपनी उसी बीबी को थानेदार के हाथ में क्यों देते हो ?"

मेरी ऐसी विचित्र बात सुन और अपने हाथ की लालटेन से मेरे चेहरे की ओर देख कर उस कलूटे ने हंस कर यों कहा,—"आह, दिलरुबा ! तो यह बात तुमने मुझसे पेश्तर क्यों न कही ?"

मैं बोली,—" पहिले तुम्हीने अपने जी की बात मुझसे कब कही थी ? अस्तु, सुनो हींगनमियां ! तुम अब मेरे जी के असली

भेद को सुनो। आज यहां आते ही मैंने पहिले तुम्हें देखा था और तुम्हारे साथ मेरी दो चार बातें भी हुई थीं। बस, उसी समय से तुम्हारी बातें सुनकर मैं तुम पर लट्टू होगई हूँ और खुशी से तुम्हारी बीबी बनना चाहती हूं। इसलिये यदि तुम मुझे अबदुल्ला के हाथ से निकाल कर कहीं लिवा ले चलो, तो मैं तुम्हारी ही होकर रहूँगी।"

यह सुनकर हींगन हाथ मलकर यों कहने लगा,—"या इलाही, तो अब मैं क्या करूं और इस वक्त उस जालिम अबदुल्ला के हाथ से क्योंकर तुम्हें बचाऊं?"

मैं बोली,—"हिम्मत बांधो, जी को पोढ़ा करो, कुछ जवां-मर्दी खर्च करो और अबदुल्ला से लड़कर मुझे यहांसे ले भगो। देखो,—सुनो, मैं जो उपाय बतलाती हूं, उसे ध्यान से सुनो। देखो, यह तो तुम्हें मालूम ही है कि इस समय अबदुल्ला ने तुम्हारे अलावे, बाकी के छओं चौकीदारों को अपनी कोठरी में चले जाने के लिये कहा है। इसलिये अब वे छओं चौकीदार आज रातभर कभी कोठरी से बाहर न निकलेंगे। ऐसे मौके को तुम नाहक अपने हाथ से न खोवो और अबदुल्ला को खूब शराब पिला और उसे बेहोश करके मुझे यहांसे कहीं दूसरी जगह ले चलो। फिर जब हम-दोनों किसी अच्छी जगह पहुंच जायंगे, तब जो कुछ तुम कहोगे, उसे बिना उज्र मैं करूंगी।"

इस उपाय को सुनकर शैतान हींगन उछल पड़ा और बोला,—"बस, बस, अब तुम कोई अन्देशा न करो और बेफिक्र रहो। वाकई, बी दुलारी! तुमने तर्कीब तो बड़े आला दर्जे की बतलाई! बस, अब तुम ज़रा न डरो और देखो कि मैं क्या करतब कर गुज़रता हूं।"

हींगन ने यह बात कही तो सही, पर उसकी बात पर मुझे कुछ भी भरोसा न हुआ; क्योंकि वह खुद भी इतनी शराब पीए

हुए था कि उसके पैर ठीक तौर से धर्ती में नहीं पड़ते थे और उसके मुहं से ऐसी दुर्गन्धि निकल रही थी कि जिससे मेरा सिर चक्कर खाने लग गया था। यहां तक कि उसके मुहं से साफसाफ बात भी नहीं निकलती थी। यह सब था, पर फिर भी मैंने उसे इसीलिये यह चकमा दिया था कि, 'जिसमें वह अबदुल्ला को खूब शराब पिलाकर बेहोश करदे; क्योंकि यदि अबदुल्ला नशे में गाफिल होजाय तो फिर हींगन ऐसे जानवरों को अंगूठा दिखाते मुझे तनिक भी देर न लगेगी।'

हींगन के साथ मेरी इतनी ही बात होने पाई थी कि इतने ही में हाथ में एक लालटेन लिये हुए झूमता झामता अबदुल्ला भी वहीं पर आ पहुंचा और त्योरी बदलकर उसने हींगन से यों कहा,—"क्यों बे, उल्लू के पट्ठे! तूने इतनी देर क्यों लगाई?"

यह सुनकर हींगन कुछ बिगड़ा नहीं, वरन बड़ी आजिजी के साथ उसने अबदुल्ला से यों कहा,—"अजी, हज़रत! यह नई औरत आपके पास चलने में जरा हिचकती और शरमाती थी, इसलिये मैं इसे खूब समझा-बुझा रहा था। बस, अब यह राजी होगई है। इसे लेकर मैं आने ही वाला था कि आप खुद आ पहुंचे। चलिए, इसे मैं लिवाए चलता हूं।"

हींगन की ऐसी बातें सुनकर अबदुल्लाने हंसकर उससे कहा,—"वाकई, मियां हींगन! तुम बड़े होशियार और काबिल एतबार शख्स हो। मैं सदर में तुम्हारे लिये सिफारिश करूंगा और तुम्हें चौकीदार से जमादार बनवा दूंगा। मगर खैर, अब तुम इस माहे-लका को उस कोठरी में फौरन ले आओ।"

यों कहकर अबदुल्ला डग मारता हुआ वहांसे चला गया। उसके रंग ढंग से यह मैंने जान लिया था कि यह शराब के नशे में भरपूर चूर हो रहा है!

अस्तु, उसके जाने पर हींगन ने मुझसे कहा,—"लो, अब चलो

और बेफिक्र रहो; क्यों कि मैं तुम्हारी मदद पर मुस्तैद रहूँगा और अबदुल्ला साला तुम्हारे जिस्म में उंगली भी न लगाने पाएगा। मैं तुम्हारी हिफाजत करूंगा और अगर उस बदज़ात ने तुम्हारे साथ कुछ ज्यादती करनी चाही, तो उसे फौरन मार डालूंगा।"

यह सुन और घबरा कर मैंने उससे यों कहा,—सुनों, हींगन मियां! खून-खराबे की कोई जरूरत नहीं है, इसलिये तुम वैसा कोई भयानक काम न कर बैठना। हां, यह तुम कर सकते हो कि उस (अबदुल्ला) को खूब ढेर सी शराब पिला कर बेहोश कर दो और मुझे यहांसे कहीं ले चलो। सुनो, भई! मेरे घर में पांच-पांच खून तो हो ही चुके हैं; इसलिये यही अब एक खून की गिनती और बढ़े, यह मैं नहीं चाहती।"

मेरी ऐसी बात सुन कर चलते-चलते हींगन ने यों कहा,—"खैर, तुम कोई अन्देशा न करो। मैं बराबर तुम्हारी मदद पर रहूँगा और जैसा मौका देखूंगा, वैसा करूंगा। तुम मुझे बिलकुल नशे में डूबा हुआ न समझना।"

मैं बोली,—"खैर, तुम जैसे हो, बहुत अच्छे हो; लेकिन इतना मैं फिर भी तुम्हें चिताए देती हूँ कि अब तुम खुद तो जरा भी शराब न पीना, मगर अबदुल्ला को खूब पिलाना।"

इस पर वह बोला,—"अच्छा, जैसा तुम कहती हो, वैसा ही किया जायगा। लो, आओ; अब झट पट चलो।"

यों कह कर वह मुझे अपने आगे करके ले चला और उसके साथ मैं अबदुल्ला की उसी कोठरी में पहुंची, जिसमें मैंने सवेरे उसे देखा था।

वहां आ कर मैंने क्या देखा कि एक ओर एक स्टूल पर धरी हुई लालटेन जल रही है और तख्तेपोश के ऊपर बैठा हुआ अबदुल्ला शराब पी रहा है!

मुझे देखते ही उसने हंस दिया और उसी तख्तेपोश पर

आकर बैठजाने का इशारा किया। किन्तु मैं उस तखतेपोश पर न बैठ कर नीचे धर्ती में बिछे हुए टाट के बोरे पर बैठ गई और हंस कर यों बोली,—"जी, यहीं अच्छा है।"

इस पर जब वह बार बार मुझसे तखतेपोश पर बैठने के लिए कहने लगा तो हींगन ने उसके प्याले में शराब ढाल कर उससे यों कहा,—"खैर, जरा और ठहर जाइए, क्यों कि जब यह इस कोठरी के अन्दर आही गई है, तो फिर तखतेपोश पर आने में कितनी देर लगेगी। आप क्या यह बात नहीं जानते कि, 'नई नवेली नार जरा जियादह मिन्नतें कराती हैं'!"

हींगन की बात पर अबदुल्ला जरा गरम हो उठा और त्योरी बदल कर उससे बोला,—"बस, बस, चुप रहो, क्योंकि इस वक्त तुम्हारे बकालत करने की कोई जरूरत नहीं है; इसलिये अब तुम फौरन यहांसे चले जाओ और अपनी कोठरी में जाकर आराम करो।"

यह सुन कर हींगन भी झल्ला उठा और ताब-पेच खा कर यों कहने लगा,—"नहीं, मैं इस कोठरी के बाहर नहीं जाऊंगा। क्योंकि अभी तो शाम ही हुई है। इसलिये जरा दो-चार बोतलों को खाली होने दीजिए, उसके बाद मैं आपही यहांसे चला जाऊंगा।"

यह सुन कर अबदुल्ला ने कहा,—"लो, लो,—यह एक बोतल शराब तुम लेते जाओ।"

हींगन बोला,—"और साथ ही, इस नाज़नी को भी लेता जाऊं? क्यों? क्योंकि बगैर इस परी के, तनहाई में शराब पीकर अच्छी लगेगी?"

हींगन की यह बात सुन कर अबदुल्ला बहुत ही झल्लाया और हींगन को गालियां देने लगा। पर हींगन चुपचाप खड़ा खड़ा लाल लाल आंखों से अबदुल्ला की ओर घूरता रहा। अबदुल्ला भी हींगन की तरफ भौंवें तान तान कर गुरेर रहा और बड़ी तेज़ी के

साथ प्याले पर प्याले खाली करता चला जा रहा था। हां, हींगन ने मेरी बात मान कर फिर एक घूंट शराब भी नहीं पीई थी।

योंहीं तीन-चार बोतलों को बात की बात में खाली करके अबदुल्ला ने हींगन से कहा कि,—"बस, अब तू यहां से जा।"

किन्तु जब वह अपनी जगह से जरा भी न टसका, तब अबदुल्ला ने अपने हाथ के शराबवाले प्याले को उस पर खींच मारा और बड़े जोर से चिल्ला कर यों कहा,—"बस, चला जा, हरामी पिल्ले! तू फौरन इस कोठरी के बाहर निकल जा।"

प्याले की चोट तो हींगन को न लगी, क्योंकि वह जरा तिरछे होकर उस निशाने को बचा गया था; पर इस प्याले के जवाब में जो उसने जूता खैंच कर मारा, वह अबदुल्ला के सिर पर जाकर जरूर लगा।

जूते का लगना था कि अबदुल्ला ने म्यान से तलवार खींच ली और तख्तेपोश पर उठ कर वह खड़ा होगया। इतने ही में हींगन भी एक तलवार लेकर उस तख्तेपोश पर चढ़ गया और दोनों के वार चलने लगे। यह हाल देख कर मारे डर के मैं उठ कर खड़ी तो हो गई थी, पर पैर न उठने से भाग नहीं सकी थी।

योंहीं जैसे ही हींगन ने अबदुल्ला की गर्दन पर तलवार चलाई थी कि उस (अबदुल्ला) ने भी अपनी तलवार हींगन के कलेजे में घुसेड़ दी। बस, वे दोनों साथ ही उस तख्तेपोश पर गिर गए और अबदुल्ला का सिर मेरे पैरों से आकर टुकराया !!!

यह अनोखा तमाशा देख कर मेरे तो देवता कूच कर गए और मैं चक्कर खा कर जहां खड़ी थी, वहीं गिर गई!

मैं कबतक बेसुध पड़ी रही, यह तो नहीं कह सकती, पर जब मुझे चेत हुआ तो मैंने क्या देखा कि, 'मैं उसी कोठरी में पड़ी हूं, जिसमें कि अबदुल्ला ने मुझे बुलाया था!' यह स्मरण होते ही मैं चट से उठ कर खड़ी होगई और आगे बढ़ चली कि मेरे पैर में

किसी चीज की ठोकर लगी! यह जानकर मैंने धर्त्ती की ओर देखा तो क्या देखा कि, 'अबदुल्ला का सिर मेरे पैर की ठोकर खाकर दरवाजे के चौखट तक लुढ़क गया है!' यह देखकर मेरे सारे बदन के रोंगटे खड़े होगए और बड़े जोर जोर से कलेजा उछलने लगा! फिर मैं जहां की तहां खड़ी की खड़ी रह गई और मेरे पैरों ने चलने से जवाब दे दिया! इतने ही में मेरी नजर उस तख्तेपोश की ओर गई तो मैंने क्या भयङ्कर दृश्य देखा कि, 'अबदुल्ला का बिना सिर का धड़ पड़ा हुआ है और उसके हाथ वाली तलवार हींगन के कलेजे में घुसी हुई है! हींगन भी मुंह बाए हुए मरा पड़ा है और उसके हाथ से छूट कर तलवार तख्त पर गिर गई है! सारा तख्तेपोश खून से भर गया है और नीचे धर्त्ती में भी बहुतसा खून बह आया है!' इतने ही में मैंने अपनी ऊनी चादर की ओर देखा तो उसमें भी खून लगा दिखाई दिया! केवल इतना ही नहीं; वरन मेरी धोती की लावन (नीचे के किनारे) में भी खून लगरहा था और मेरा पैर भी खून से रंग गया था; क्योंकि कोठरी में खून बहा था कि नहीं!

हाय, इस भयङ्कर दृश्य को देखकर मेरे तो होश उड़ गए और देर तक मैं उसी कोठरी में खड़ी खड़ी पगली की तरह इधर उधर निहारती रही। इतने ही में एकाएक नजाने मेरे मन में क्या तरङ्ग उठी कि झट दौड़कर मैं उस कोठरी से बाहर निकल भगी। उस समय भी मुझे अबदुल्ला के सिर की ठोकर लगी थी, क्योंकि वह लुढ़क कर दरवाजे के बीचों बीच आकर ठहर गया था!

अस्तु, फिर मैं उस खयाल को छोड़कर उस ओर लपकी, जिधर वह कोठरी थी, जिसमें कि वे छओं चौकीदार रहते थे। तो, मैं उनचौकीदारों की कोठरी की ओर क्यों चली? इसलिये कि मैं भागना नहीं चाहती थी, क्योंकि इस संसार में मेरे लिये ऐसी कोई जगह न थी, जहां पर जाकर मैं छिपसकती और

अपनी जान बचा सकती। इसी लिये मैं दौड़ी हुई उसी कोठरी के आगे जा पहुंची और खूब ज़ोर से चिल्ला कर मैंने उन चौकीदारों को पुकारा और उन्हें बाहर बुलाया।

छओं बेचारे कोठरी के बीच में बैठे हुए आग ताप रहे थे। सो, मेरी डरावनी चिल्लाहट सुन कर वे ऐसे चिहुंक पड़े कि एक दम से सब के सब उस कोठरी के बाहर निकल आए और मुझसे सभी यों पूछने लगे कि,—"एँ, एँ! क्या बात है? तुम इतना शोर क्यों मचा रही हो? क्यों, बोलो, क्या बात है?"

पर उन सभों की उन सब बातों के जवाब देने को उस समय मुझे छुट्टी कहां थी! क्योंकि ज्यों ही वे छओं अपनी कोठरी के बाहर आए थे, त्योंहीं मैंने बड़ी फुर्ती के साथ उस कोठरी के भीतर घुस कर अन्दर से उसकी कुण्डी चढ़ा ली थी और एक जंगलेदार खिड़की के आगे खड़ी होकर उन छओं चौकीदारों से यों कहा था,—"भाइयों, तुम सब ज़रा थानेदार की कोठरी की ओर जाओ और जाकर देखो कि वहां कैसा खून-खराबा हुआ है!"

मेरी बात अनसुनी कर कियानतहुसेन ने ज़रा कड़क कर यों कहा,—"ओ औरत! तूने मेरी कोठरी के अन्दर घुस कर भीतर से कुण्डी क्यों बंद करली है?"

इस पर मैंने कहा,—"सुनो, मियांजी! तुम "तू तड़ाक" तो रहने दो, और जाकर ज़रा यह तो देखो कि तुम्हारे थानेदार और हींगन का क्या हाल हुआ है!"

ऐसी बात सुन कर रामदयाल ने कहा,—"क्यों, उन दोनों का क्या हाल है?"

मैं बोली,—"वे दोनों मेरे लिये आपस में लड़ कर कट मरे हैं!"

बस, इतना सुनते ही वे छओं ज़ोर से चीख मार उठे और तेजी के साथ अबदुल्ला की कोठरी की ओर दौड़े।

पन्द्रहवां परिच्छेद।

खून की रात!

" समागते भये धीरो धैर्येणैवात्मना नरः।
आत्मानं सततं रक्षेदुपायैर्बुद्धिकल्पितैः॥ "
(व्यासः)

वे सब तो उधर गए और इधर मैं उस कोठरी की देख-भाल करने लगी। मैंने क्या देखा कि, 'उस बड़ी सी छप्परदार कोठरी में आठ खाट बराबर-बराबर बिछरही हैं, डोरी की 'अरगनी' पर कपड़े-लत्ते टंग रहे हैं, कोठरी के बीचोंबीच आग जल रही है, एक कोने में बहुत से बड़े-बड़े लट्ठ सरिआए हुए हैं, दूसरे कोने में भरी हुई एक तोड़ेदार बंदूक रक्खी हुई है, तीसरे कोने में आठ गँड़ासे धरे हुए हैं और चौथे कोने में चार तलवारें खड़ी की हुई हैं!!! यह ठाठ देख कर मैंने एक तलवार स्यान से खींच ली और वह भरी हुई बन्दूक भी उठा ली।

फिर उस कोठरी की उस जङ्गलेदार खिड़की के पास आ कर मैं खड़ी हो गई और उन चौकीदारों का आसरा देखने लगी, जो अबदुल्ला की कोठरी की ओर गए थे। मैंने उस तलवार और बन्दूक को अपने अगल-बगल दीवार के सहारे खड़ी कर लिया था।

बस, इतने ही में वे सब के सब शोर-गुल मचाते हुए मेरी कोठरी के आगे आकर ठहर गए और सभी पारी-पारी से चिल्ला चिल्ला और उस कोठरी के किवाड़ में धक्के देदे कर यों कहने लगे,—"ओ खूनी औरत! तू जल्द कुण्डी खोल और बेड़ी-हथकड़ी पहिर कर उसी कोठरी में चल, जिसमें दिन को बन्द थी।"

उन सभों का ऐसा हो-हल्ला सुनकर मैंने भी फिर खूब जोर से चिल्लाकर यों कहा,—"बस, खबरदार! तुम लोग जादे शोर-गुल न मचाओ और चुपचाप इस कोठरी के बाहर ही रहकर मेरी

चौकसी करो। सुनो, मैं न तो खूनी औरत हूँ और न कोई खून ही मैंने किया है। देखो, जो मुझे भागना ही होता तो मैं आप ही आप यहां क्यों आती ? फिर अब्दुल्ला और हींगन के मरते ही मैं अपना रास्ता लेती, तुम सभों के पास क्यों आती ? इसलिये भाइयों, मैं यहांसे कहीं भागकर इस खून के अपराध को अपने ऊपर नहीं लिया चाहती। तुमलोग बेफिक्र रहो, क्योंकि मैं कहीं भागने वाली नहीं हूं। हां, यह तुम कर सकते हो कि बाहर से ही मेरा पहरा दो और अपनी नौकरी बजाओ। सुनो, अब रातभर इस कोठरी की कुण्डी मैं कभी न खोलूंगी। हां, सबेरा होने पर जैसा मुनासिब समझूंगी, वैसा करूंगी।"

बस, इसी तरह मैंने उन सभोंको बहुत कुछ समझाया, पर वे न माने और बार बार किवाड़ में धक्का देने और सांकल खोल देने के लिये कहने लगे।

आखिर, जब वे सब बहुत ही उपद्रव मचाने लगे, तब मैंने उस भरी हुई बन्दूक को उठा और उसकी नली खिड़की के जङ्गले के बाहर करके यों कहा,—"बस, बहुत हुआ। अब या तो तुम सब इस दरवाजे के पास से हटजाओ, या मरो। देखो, इस भरी हुई बन्दूक की ओर जरा देखो और इस बात को सही जानो कि अब जो कोई इस कोठरी के दरवाजे के पास आवेगा, उसपर जरूर मैं बन्दूक दाग दूंगी। इसमें पीछे चाहे जो हो, पर इस समय तो मैं अवश्य ही गोली मार दूंगी।"

मेरा ऐसा रंग-ढंग देखकर वे छओं चौकीदार उस कोठरी के दरवाजे से हटकर उस जङ्गलेदार खिड़की के सामने,—पर जरा दूर आकर खड़े होगए और, रामदयालमिश्र ने उन सभोंके आगे आकर मुझसे यों कहा,—"क्यों, दुलारी, तुम क्या इस समय अपने होशोहवास में मुतलक नहीं हो ?"

मैं बोली,—"क्यों ? ऐसा प्रश्न आप क्यों करते हैं ? बताइए,

मैंने बदहोशी की कौनसी बात की ?"

वे बोले,—"और क्या करोगी ! इस समय के तुम्हारे रंग-ढंग को देखकर तो हमलोगों के देवता कूंच कर गए हैं ! अरे, पांच खून तो तुम्हारे मकान पर हुए और दो यहां ! अब तुम्हीं बताओ कि यह सब देख सुनकर हमलोग क्या समझें ?"

मैंने पूछा,—"इसमें समझने की कौनसी बात है ?"

वे बोले,—"यही कि जैसी लीला मैं देख रहा हूं, उससे तो यही जी में आता है कि घर पर भी वे पांच खून तुम्हीं ने किए और यहां पर भी ये दो हत्याएं सिवा तुम्हारे और किसीने नहीं कीं !"

मैं बोली,—"यह आपको अधिकार है कि आपके जो जो में आवे, सो आप समझें; पर सुनिए तो सही,—मैं तो भागी नहीं हूं, यहीं मौजूद हूं; इसलिये आपलोग बाहर से ही मेरा पहरा दीजिए और ऐसा उपाय कीजिए कि जिसमें पंच्छी की तरह उड़कर मैं कहीं भाग न जाऊं।"

वे बोले,—"इसीलिये तो कहता हूं कि अब तुम होश में आकर सीधी तरह इस कोठरी का दरवाजा खोलो।"

मैं बोली,—"क्यों ?"

वे बोले,—"यों कि अब इस समय हमलोग तुम्हें उसी कोठरी में बन्द करना चाहते हैं, जिसमें कि तुम दिन के समय बन्द थीं।"

मैं बोली,—"और जो मैं इसी कोठरी में रातभर बन्द रक्खी जाऊं, तो क्या हर्ज है ?"

वे बोले,—"देखो, और इस बात पर तुम आपही खूब गौर करो कि यह कोठरी हम लोगों के रहने की है। इसमें हमारे खाट बिछौने कपड़े-लत्ते और खाने पीने के सारे सामान धरे हुए हैं ! अब तुम्हीं सोचो कि इस हाड़तोड़ जाड़े में बिना ओढ़ने के हमलोग ओस में कैसे रह सकेंगे ?"

मैं बोली,—"यह तो आप ठीक कह रहे हैं, और अवश्य

इस जाड़े-पाले में खुले मैदान में रहने से आपलोगों को बड़ा कष्ट होगा। पर क्या करूं, मैं लाचार हूं। क्योंकि दरोगा और हीरासिंह की करतूत देखकर अब मुझे किसी पर जरा भी भरोसा नहीं होता। इसलिये अब, तबतक मैं इस कोठरी का दरवाजा कभी न खोलूंगी, जबतक कि कोई अङ्गरेज अफ़सर यहां पर न आजायगा।"

मेरी बात सुनकर दियानतहुसेन और रामदयाल ने पारी-पारी से यों कहा कि,—"नहीं दुलारी, तुम कोई अन्देशा न करो और हमलोगों पर भरोसा रक्खो, क्योंकि हमलोग पराई औरतों को मां, बहिन और बेटी के बराबर समझते हैं।"

यह सुन कर बाकी के चारों चौकीदारों ने भी ऐसा ही कहा, पर मैंने उनसभों की बातों पर विश्वास न करके यों कहा,—"आपलोगों ने जो कुछ कहा, वह ठीक है; पर यह कहावत भी आपलोगों ने जरूर ही सुनी होगी कि, 'गरम दूध से जिसकी जीभ जल जाती है, वह मनुष्य ठंढे मठे को भी फूंक फूंक कर पीता है।' इसलिये मुझ निगोड़ी के कारण आपलोग एक रात का कष्ट भोग लें और इस दरवाजे के खुलवाने के लिये जादे हठ न करें। आप यह निश्चय जानें कि अब यह दरवाजा तभी खुलेगा, जब कोई अंगरेज अफसर यहां आवेगा। देखिए, सामने उस पेड़ के नीचे जो दो तखत पड़े हुए हैं, उन पर आपलोग आज की रात आराम कीजिए और लकड़ियों को जला कर जाड़े का कष्ट दूर करिए। हां, इतना आप कर सकते हैं कि इस दरवाजे की सांकल बाहर से बंद करके उसमें ताला लगा दें।"

मेरा ऐसा हठ देखकर वे सब फिर आप ही आप भुनभुना कर चुप होगए और एक चौकीदार ने बाहर से ताला लगा कर अपने साथियों से यों कहा,—"ऐसी जबरदस्त औरत तो देखने ही में नहीं आई!!!"

इस पर दूसरे ने यों कहा,—"तब तो इस अकेली ने सात-सात

मरदों के खून कर डाले !!!"

इन सब बातों पर मैंने कान न दिया और अपनी बंदूक को भीतर खैंच कर बगल में खड़ी कर दिया। फिर एक मूढ़ा मैं खैंच लाई और उसी पर खिड़की के सामने बैठ गई।

बाद इसके, मैंने क्या देखा कि, वे सब चौकीदार उसी सामने वाले पेड़ के नीचे पड़े हुए तखत पर बैठ कर आपस में इस बात की सलाह करने लगे कि, 'अब क्या करना चाहिए!' योंहीं देर तक आपस में खूब 'घोलमट्ठा' करके उन सभोंने यह निश्चय किया कि, 'रामदयालमिश्र तो एक चौकीदार के साथ इस वार्दात की रिपोर्ट करने कानपुर जाय, और बाकी के चारों आदमी मेरी चौकसी करें।'

जब यह सलाह आपस में पक्की हो गई, तब रामदयालमिश्र मेरी खिड़की के पास आए और यों कहने लगे,—"दुलारी, तुम्हारे भाग्य में क्या लिखा है, इसे तो विधाता ही जाने; क्योंकि बात बड़ी बेढब हुई है! खैर, जो कुछ तुम्हारे करम में बदा होगा, वह होगा। अब यह सुनो कि मैं कानपुर जाता हूं और जहां तक मुझसे होसकेगा, वहां तक इस बात की मैं कोशिश करूंगा कि जिसमें कोई अंगरेज अफसर यहां आवें। किन्तु यदि कोई अंगरेज अफसर न भी आवेंगे तो कानपुर के कोतवाल साहब तो अवश्य ही आवेंगे। यदि कोतवाल साहब आ गए, तो भी तुम उनसे किसी वैसी बात की शङ्का न करना; क्योंकि वे बहुत ही सज्जन और दियानतदार मुसलमान हैं।"

यह सुन कर मैंने कहा,—"भाई साहब, आपका कहना ठीक है; पर जहां तक हो सके, आप किसी अंगरेज अफसर के लाने की जरूर कोशिश करिएगा; क्योंकि यहांका रंग-ढंग देख कर हिन्दुस्तानियों के ऊपर से मेरा विश्वास अब एक दम उठ गया है। यह बात आप भली भांति समझ लें कि चाहे मैं बिना अन्न-

जल के इस कोठरी में मर ही क्यों न जाऊं, पर बिना किसी अंगरेज अफ़सर के आए, अब मैं इस कोठरी का किवाड़ कभी भी न खोलूंगी। आप कानपुर जाते हैं, तो जाइए; पर अपने जोड़ीदारों से यह बात अच्छी तरह समझाते जाइए कि, 'इस कोठरी के द्वार खुलवाने के लिये कोई हठ न करे।' यदि आपके पीछे मुझे किसीने छेड़ा, तो आप निश्चय जानिए कि या तो मैं अपने छेड़नेवाले पर बन्दूक चलाऊंगी, या आपही अपने कलेजे में गोली मारलूंगी।"

मैंने ये बातें इतनी ज़ोर से कही थीं कि उन्हें वहांपर के सभी चौकीदारों ने सुना था, पर मेरी बातों का किसीने कोई जवाब नहीं दिया था। हां, रामदयाल ने उन सब चौकीदारों की ओर देख कर यह ज़रूर कहा था कि,—"देखना भाइयों, इस 'बीरनारी' को तुमलोग ज़रा न छेड़ना।"

जब इस बात को उन सभों ने मान लिया, तब रामदयाल ने मियां दियानतहुसेन से यों कहा,—"दियानतहुसेन! तुम इस कैदी औरत की खूब चौकसी करना। मैं अब कादिरबख्श चौकीदार के साथ कानपुर जाता हूं। यदि हो सका तो कल किसी अंगरेज अफसर को भी ज़रूर साथ लेता आऊंगा।"

यह सुनकर दियानतहुसेन ने कहा,—"तुम वहां जाओ और यहांकी फिक्र ज़रा भी न करो।"

बस, फिर बाहर सन्नाटा छा गया और दो चौकीदार कंधे पर गड़ांसा रखकर मेरी कोठरी के आगे टहलने लगे। उन दोनों में दियानतहुसेन भी थे।

बस, फिर तो मैं उसी खिड़की के आगे बैठी रही और पगली की तरह रह रह कर बाहर की तरफ़ झांकने लगी। उस समय सचमुच मैं अपने आपे में न थी और यह नहीं जानती थी कि मैं क्या कर रही हूँ! बस, केवल यही धुन मेरे सिर पर सवार थी कि, 'अपना प्राण देकर भी अपने अमूल्य सतीत्व धर्म की रक्षा

करनी चाहिए।' बस, इसी खयाल में रातभर मैं डूबी रहा और इस बात का मुझे जरा भी ध्यान न रहा कि अब आगे क्या होगा!

मैं सारी रात अपने ध्यान में डूबी रही, क्योंकि फिर किसी चौकीदार ने मुझे नहीं टोका। सो, सारी रात मैं मूढ़े पर बैठी हुई जागती थी, या सोती थी, इस बात की तो मुझे अब तनिक भी सुध नहीं है; पर हां, इतना अवश्य स्मरण है कि जब सुबह की सफेदी आसमान पर फैल रही थी, तब उस जंगले के पास आकर दियानतहुसेन ने मुझे कई आवाजें दी थीं; और जब मैं उनके पुकारने से मूढ़े पर से उठ खड़ी हुई थी, तब उन्होंने यह कहा था कि,—"वाह री औरत! इस हाड़तोड़ जाड़े में भी तू बिना कुछ ओढ़े-पहिरे खिड़की के पास बैठी हुई है और ऐसी सनसनाती हुई हवा के झोंके का कुछ भी खयाल नहीं करती!"

सचमुच, उस रात को मेरी अजीब हालत रही; अर्थात् मुझे कैदवाली कोठरी से निकालने के समय हींगन ने जो कुछ मुझसे कहा था, उससे मेरा सारा शरीर मारे क्रोध के लहक उठा था और ज्ञान लोप होगया था! सो, जब दियानतहुसेन ने मुझे चैतन्य करके सर्दी और हवा की बात कही, तब मैं अपने आपे में आई और मैंने क्या देखा कि मेरा ओढ़ना धरती में गिर गया है, सारा शरीर बरफ़ की तरह ठंढा होगया है और माथा खूब जल रहा और चक्कर खा रहा है! इसके बाद मुझे यह खयाल हुआ कि, 'उस कोठरी में रात को कैसा भयङ्कर काण्ड होगया है!' इस खयाल के होते ही मैं कांप उठी।

अस्तु, फिर भी मैं उसी खिड़की के आगे मूढ़े पर बैठी रही और तरह तरह के सोच बिचारों में डूबती-उतराती रही। हां, अपने ओढ़ने को मैंने उस समय जरूर ओढ़ लिया था। यह हालत कब तक रही, यह तो मुझे अब याद नहीं है, पर जब रामदयाल ने जंगले के पास आकर मुझे कई आवाजें दीं, तब मैं फिर चैतन्य हुई।

सोलहवां परिच्छेद ।

बन्दिनी !

" प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ,
विफलत्वमेति बहु साधनता ।
अवलम्बनाय दिनभर्त्तुरभू-
न्न पतिष्यतः करसहस्रमपि ॥ "

(माघः)

मुझे चैतन्य जानकर रामदयाल ने कहा,—" ओ कैदी औरत ! अब उठ और कोठरी का दरवाजा खोल। देख तो सही, कि कितना दिन चढ़ आया है ! कानपुर से कोतवाल साहब और पुलिस के बड़े साहब भी आ गए हैं और तुझे बुला रहे हैं । "

यह सुनकर मैंने बाहर की ओर देखा तो क्या देखा कि दिन डेढ़ पहर के अंदाज चढ़ आया है, मेरी कोठरी के सामने एक मूढ़े पर एक अंगरेज बैठे हैं और कई लाल पगड़ीवाले उनके अगल बगल और पीछे खड़े हैं ! यह देखकर मैंने रामदयाल से कहा कि,—" साहब को भेजो । "

मैंने देखा कि मेरी बात सुनकर रामदयाल चौकीदार ने उन साहब बहादुर के सामने जाकर कुछ कहा, जिसे सुनकर वे मूढ़े पर से उठकर मेरी खिड़की के पास आए और बहुत ही मीठेपन के साथ यों कहने लगे,—" टुमारा नाम क्या है ? "

मैं बोली,—" दुलारी । "

वे बोले,—" अच्छा, डुलाड़ी ! टुम अब डरवाजा खोल डो । "

मैं बोली,—" बहुत अच्छा, मैं अभी दरवाजा खोलती हूं; पर पहिले आप कृपाकर इस बात का मुझे विश्वास तो दिला दें कि, 'मेरी इज्जत-आबरू पर तो कोई आंच न पहुंचेगी ' ? "

वे बोले,—" नेईं, कभी नेईं ! टुमारा इज्जट कोई नेईं बिगाड़ने

शकटा। बृटिश का राज में औरट का इज्जट कोई नेई लेने शकटा। टुम बेखौफ़ डरवाजा खोलो।"

यह सुनकर मैंने तुरन्त दरवाजा खोल दिया। बस, ज्योंहीं मैं दरवाजे के बाहर हुई, त्योंही साहब बहादुर ने कहा,—" ओ औरट! टुम खून का अशामी है, इश वाशटे टुमको हथकड़ी पहनना होगा।"

यह सुनकर मैंने कहा,—" नहीं, साहब! आप ऐसी बात न कहिए और मेरा बयान सुने बिना मुझे ऐसा इलज़ाम मत लगाइए, क्योंकि मैंने कोई खून-ऊन नहीं किया है।"

इस पर साहब बहादुर ने कहा,—"आलबट, टुम ठीक बोलटा हाय; पर जब टक टुम बेकसूर साबिट नहीं होगा, टब टक टुमको हठकड़ी पहरना व कैड में रहना होगा।"

यह सुनकर मैंने अपने दोनों हाथ फैला दिए और साहब बहादुर का इशारा पाकर एक पुलिसअफसर ने मुझे हथकड़ी पहना दी। मुझे उसी समय यह मालूम होगया था कि जिन्होंने मुझे हथकड़ी पहराई थी, वे कानपुर के कोतवाल थे।

बस, फिर मैं तो चार सिपाहियों के पहरे में एक ओर खड़ी कर दी गई और साहब बहादुर और कोतवाल साहब उस कोठरी की ओर चले गए, जिसमें खून हुआ था।

थोड़ी देर के बाद वे दोनों उस कोठरी से बाहर हुए और एक पेड़ की छाया में आकर साहब बहादुर तो एक मूढ़े पर बैठ गए और सिगार पीने लगे, और कोतवाल साहब एक चारपाई पर बैठकर मुझसे बोले,—" तुम अपना बयान लिखवाओ।"

यह सुनकर भी जब मैं चुपचाप खड़ी रही, तब साहब ने मुझसे कहा,—" टुम बोलटा क्यों नेईं?"

इस पर मैंने यों कहा,—" साहब, हिन्दुस्तानियों के अत्याचारों को देखकर उन पर से मेरा सारा विश्वास उठ गया है, इसलिये

जब तक आप खुद कोई हुक्म न देंगे, तब तक मैं किसी दूसरे के कहने से कुछ भी न करूंगी।"

मेरी बात सुनकर साहब जरा सा मुस्कुराए और कहने लगे,—"अच्छा बाट है। हम हुक्म डेटा है, टुम अपना बयान बोलो।"

मैं बोली,—"बहुत अच्छा, सुनिए—"

यों कहकर जो कुछ सच्ची बात थी, उसे मैं कहती गई और कोतवाल साहब झट झट लिखते गए।

बस, यहांतक कहकर मैंने उन साहब बहादुर की ओर देखकर यों कहा, जो भाई दयालसिंहजी के बीच में बैठे हुए मेरा बयान लिख रहे थे,—"क्यों, साहब! क्या मैं उस कहानी को फिर दुहराऊं, जिसे कि मैंने अभी ऊपर सिलसिलेवार बयान किया है?"

यह सुनकर साहब ने कहा,—"नेईं, अब टुमारा उस बाट के कहने का कोई जरूरट नेईं है। टुम खूब ठीक टरह से अपना बयान बोला। बस, इसी टौर से बराबर बोलना ठीक होगा। चलो, आगे बोलो।"

इसपर—"बहुत अच्छा"—कहकर मैंने यों कहा,—

बस, अब मेरा सारा बयान लिखा जा चुका, तब वहां पर के छओं चौकीदारों का बयान लिया और लिखा गया। उन चौकीदारों का बयान मैंने भी सुना था और उसके सुनने से मुझे बड़ा आश्चर्य इस बात का हुआ था कि दियानतहुसेन और रामदयाल सरीखे भले आदमियों ने भी हलफ लेकर न जाने क्यों, बहुत कुछ झूठा ही बयान लिखवाया!!! पर ऐसा उन्होंने क्यों किया, इसे मैं उस समय तो नहीं समझी, पर पीछे समझ गई थी।

उन सभोंने अपने बयान में जो कुछ कहा था, उसका खुलासा मतलब यही है कि,—"यह औरत एक बैलगाड़ी पर चढ़कर यहां आई थी, पर इसके साथ थानेदार अबदुल्ला की क्या क्या बातें हुईं, उन्हें हमलोग नहीं जानते। हां, इतना हमलोग जानते हैं कि इस

औरत को उस (उंगली से दिखलाकर) कोठरी में बन्द करके अबदुल्ला हींगन चौकीदार के साथ उसी बैलगाड़ी पर इस औरत के गांव की ओर चले गए थे। क्योंकि हमलोगों ने यह सुना था कि, 'शायद यह औरत अपने घर में पांच खून कर आई है!!!' सो, हमसब थानेदार के हुकुम-बमूजिब इस औरत का पहरा देने लगे। इस जगह इस औरत ने जो यह कहा है कि, 'रामदयाल ने मुझे दूध पिलाया और फिर रामदयाल और दियानतहुसेन ने मुझसे अबदुल्ला और हींगन की बहुतसी शिकायत की।' यह बात इस औरत की सरासर झूठ है। क्योंकि इस औरत के साथ न तो किसीने किसी किस्म की बातचीत ही की और न दूध ही पिलाया। दूध तो क्या, पानी भी इसे किसीने नहीं पिलाया। हां, पहरा जरूर देते रहे। फिर रात को अबदुल्ला और हींगन इक्के पर लौटे, इसलिये यह बात हमलोग नहीं जान सके कि इस औरत की वह बैलगाड़ी क्या हुई! खैर, जब थानेदार घर लौट आए और खाना-वाना खाकर शराब पीने लगे, तब उन्होंने हम छओं चौकीदारों को यह हुकुम दिया कि,—"अब तुमसब अपनी अपनी कोठरी में जाकर आराम करो। क्योंकि अब मैं उस कैदी औरत का इजहार लूंगा और उससे उनखूनों को कबूल कराऊंगा। इसमें मुमकिन है कि वह औरत खूब शोर-गुल मचावे, मगर तुमलोग उसकी चीख-चिल्लाहट सुनकर यहां मत आना और अपनी कोठरी में ही रहना। यहां मेरे पास सिर्फ हींगन रहेगा।" बस, थानेदार का ऐसा हुकुम सुनकर हमलोग तो अपनी कोठरी में चले गए। फिर जब इस औरत ने जाकर इस खून की बात कही, तब हमलोगों ने मारे जल्दी के इस औरत को तो अपनी ही कोठरी में बन्द कर दिया और अबदुल्ला व हींगन के मारे जाने की रिपोर्ट करने कादिरबख्श और रामदयाल को कानपुर भेजा।"

बस, इन छओं का यही बयान था!!!

उन सब चौकीदारों के ऐसे झूठे बयानों को सुन कर मैं तो दंग रह गई, पर लाचार थी; क्योंकि उनके उन झूठे बयानों के ऊपर जो मैंने उज्जुर किया था, वह सुना नहीं गया! तब मैंने मनही मन यों सोचा कि कदाचित ये लोग दूध पिलाने और अब्दुल्ला और हींगन की बुराई करने की बात इसलिये स्वीकार नहीं करते कि 'कहीं वैसी बात मान लेने में उन्हींलोगों को लेने के देने न पड़ जायं।' किन्तु उनकी जिस कोठरी में मैं खुद घुस गई थी और भीतर से मैंने कुण्डी चढ़ा कर बन्दूक दिखाई थी, उस बात को ये लोग क्यों नहीं सकारते? कदाचित् उन सभों को इस बात की लज्जा होती होगी कि, एक औरत ने इन छः हट्टेकट्टे जवानों के कान काटे!' अस्तु, जो कुछ हो, परन्तु उस थाने पर मेरा स्वयं आना, मेरी बैलगाड़ी का गायब होना और फिर अब्दुल्ला और हींगन के कतल होने की खुद खबर देना इत्यादि बातों को उन चौकीदारों ने जरूर सकारा था। खैर, जितना उन सभोंने सकारा, उतना ही सही!

अस्तु, इसके बाद कानपुर के कोतवाल साहब ने मेरी ओर देख कर यों कहा,—"दुलारी, तुम्हारे घर में पांच लाशें पाई गईं और वे कानपुर चालान की गईं। सो, उन पांचों खूनों—बल्कि यहांके भी दो खून उनमें शामिल करदेने से उन सातों खूनों—का चश्मदीद गवाह तो कोई नहीं है, मगर हिरवा के गला घोंटने की बात तुमने खुद ही मंजूर की है, इससे ऐसा होसकता है कि बाकी के छओं खून भी तुम्हारे ही किए हुए हों! क्योंकि अभी तुमने अपने बयान में यहांके चौकीदारों को भरी हुई बन्दूक दिखला कर गोली मार देने की बात कही है और जांच करने से यह बात भी मालूम हुई है कि वह बन्दूक भरी हुई है! सिर्फ इतना ही नहीं, बल्कि जहांपर तुम बैठी थीं, वहां पर तुम्हारे कहने के मुताबिक एक नंगी तलवार भी धरी हुई मिली है। इन हालतों के देखने

सुनने से यह बात साफ तौर से मालूम होती है कि तुम बड़ी जर्रार औरत हो और मौका पाकर और अपनी आबरू का खयाल करके तुमने ये सात सात खून खुद कर डाले हैं! कर तो डाले हैं, तुमने सात खून, पर अब चालाकी करके छः खूनों के बारे में तो तुम दूसरे ढंग की बातें कहती हो और सिर्फ हिरवा के खून की बात कबूल करती हो। सो भी इस ढंग से, कि जिसमें उस खून का भी जुर्म तुम पर न लग सके। वाकई, तुम एक निहायत जबरदस्त और होशियार औरत हो, तभी तो बड़ी दिलेरी का काम कर गुजरी हो! इसलिये अब तुम कानपुर के मजिष्ट्रेट के आगे पेश की जाओगी और वहांसे जो कुछ होना होगा, सो होता रहेगा।"

अरे, कोतवाल साहब की इस अनोखी बात को सुन कर मैं तो दंग रह गई! हाय, मेरा बयान कुछ नहीं, और उनका "तर्क" सब कुछ! सच है, जिसके हाथ में "दण्ड" देने की शक्ति है, वह सब कुछ कर सकता है! निदान, मैंने कोतवाल साहब के साथ बहुत कुछ तर्क-वितर्क किया,—उन अंगरेज अफसर से भी बहुत कुछ कहा-सुना, पर मेरी बातों पर किसीने कान ही न दिया! तब मैंने झुंझला कर उन साहब बहादुर से यों कहा,—"साहब, आप मेरे कहने पर क्यों नहीं ध्यान देते? यदि आप मेरे बयान पर खूब अच्छी तरह गौर करेंगे, तो यह बात आपको भलीभांति मालूम होजायगी कि, 'मैंने जो कुछ कहा है, उसमें झूठ का लवलेश भी नहीं है।' देखिए, सुनिए और सोचिए कि यदि मैं हिरवा के गला घोंटने की बात स्वयं न कहती तो आप क्या करते? मैंने तो उस समय क्रोध के आवेश में बदहवास होकर उसका गला दबाया था, कुछ उसके खून करने की मेरी इच्छा थोड़े ही थी। परन्तु यदि वह मरही गया, तो उस खून के करने का अपराध मुझे कैसे लगाया जाता है? क्या उस समय मैं अपने आपे में थी, जो मुझे दोषी ठहराया जाता है? फिर अपनी इज्जत-आबरू के बचाने की गरज से यदि

अनजानते में वैसा काम मुझसे होही गया, तो उसका दंड मुझे क्यों दिया जायगा ? मैं यह नहीं जानती कि आपके आईन-कानून में क्या लिखा है, पर खून करने की बात मैं कभी भी कबूल नहीं कर सकती; क्योंकि खून करने की इच्छा से मैंने हिरवा का गला नहीं दबाया था। खैर, जो कुछ हो, या आपलोग मेरी बातों का चाहे जैसा अर्थ लगावें, पर धर्मतः मैं निष्पाप हूं और एक हिरवा को छोड़ कर बाकी के छओं आदमियों के शरीर में तो मैंने उंगली भी नहीं लगाई है। आपका कानून मुझे चाहे जैसा दण्ड दे, पर इस बात का मुझे पूरा पूरा भरोसा है कि परमात्मा मुझे अवश्य निष्पाप जान कर अपनी गोद में स्थान देगा।"

मैं इतनी बातें ऐसी तेजी और इतने क्रोध के साथ कह गई कि उसे देख-सुन-कर साहब बहादुर और कोतवाल साहब एक दूसरे की ओर देख और आपस में कुछ अङ्गरेजी में बात-चीत करके हंस पड़े! फिर साहब बहादुर ने मेरी ओर देखकर यों कहा,—"डेखो, डुलारी! यह खून का मामला है। इसमें हम कुछ नेईं करने शकटा। टुमको मजिष्ट्रेट साहब का शामने जरूर जाना होगा। फिर वहां पर टुम अपना जो कुछ कहना हो, शो बोट कहना। अगर टुमारा टकडीर में अच्छा होगा, टो टुम छूट भी शकटा है। इस वाशटे इस वकट टुम को थाने पर जाकर हाजट में आलबट रहना होगा।"

मैं बोली,—"अच्छा, साहब! मुझे जो कुछ कहना था, उसे मैं कह चुकी। अब आपके जो जी में आवे, सो आप कीजिए। मैं भी अब इस बात को देखूंगी कि संसार में "धर्म" और "सत्य" नाम के भी कोई पदार्थ हैं, या अब इस जगत में सोलहों आने कलिकाल का ही दौरदौरा होरहा है!!!"

मेरी इन बातों का जवाब कुछ भी नहीं मिला!!!

बस, फिर मैं तो एक बैलगाड़ी पर चार कांस्टेबिलों के पहरे

में कानपुर रवाने की गई और साहब बहादुर और कोतवालसाहब वहीं रह गए। यहां पर एक बात और भी समझ लेनी चाहिए। वह यह है कि अब जिस बैलगाड़ी पर मैं कानपुर जा रही थी, वह दूसरी थी, मेरी न थी। तो, मेरी क्या हुई? यह मैं नहीं जानती, क्योंकि इसके विषय में मुझसे किसीने कुछ भी नहीं कहा।

कानपुर लाई जाकर मैं कोतवाली की एक तङ्ग कोठरी में बन्द की गई। उस समय दीया बल चुका था। मेरे साथ जो चार कांस्टेबिल आए थे, वे सब कानपुर के थे, उस गांव के नहीं थे।

एक घड़ी पीछे एक कांस्टेबिल ने आ कर मुझसे यह पूछा कि,—"तुझे कुछ खाना-पीना है?"

इस पर "नहीं" कह कर मैंने उसे बिदा किया और कोठरी में पड़े हुए कंबल के ऊपर मैं पड़ रही।

मुझे आज सारे दिन का कोरा उपवास था और कल रामदयाल का दिया हुआ केवल दूध मैंने पीया था। फिर भी उस कांष्टेब्ल को मैंने लौटा दिया और कुछ भी न खाया। यह क्यों? भला, अब इसका जवाब मैं क्या दूं? मेरे पास यदि इस बात का कोई जवाब है तो केवल यही है कि उस समय भी मैं अपने आपे में न थी और पगली की तरह रह रह कर चिहुंक उठती थी। मुझे रह रह कर अपनी माता की शोचनीय मृत्यु, अपने पिता का योंहीं नदी में बहाया जाना, हिरवा का मरना, कालू इत्यादि का आपस में कट मरना, अबदुल्ला और हींगन का परस्पर लड़ मरना और मुझे इन सात-सात खूनों का अपराध लगाया जाना,—इनमें से प्रत्येक बात ऐसी थी, जो मेरे कलेजे को एक दम से मीसे डालती थी।

सो, बस, देर तक मैं उस कंबल पर पड़ी पड़ी तरह तरह के सोच-बिचारों में डूबती-उतराती रही। उसके बाद मुझे नींद आ गई, पर उस नींद में भी मुझे चैन न मिला, वरन बड़े बड़े बुरे बुरे सपने दिखाई देने लगे!!!

सत्रहवां परिच्छेद ।

हाजत में ।

"हरिणापि हरेणापि ब्रह्मणा त्रिदशैरपि ।
ललाटलिखिता रेखा न शक्या परिमार्जितुम् ॥"
(व्यासः)

योंहीं सारी रात बीती और सबेरे जब मुझे एक कांस्टेबिल ने खूब चिल्ला चिल्ला कर जगाया, तब मेरी नींद खुली ।

मैं आखें मल और भगवान् का नाम लेकर उठ बैठी और बाहर खड़े हुए कांस्टेबिल से मैंने पूछा,—"क्यों भाई, कै बजा होगा ?"

वह बिचारा बड़ा भला आदमी था । सो, उसने मेरी ओर करुणा-भरी दृष्टि से देखकर यों कहा,—"अब नौ बजनेवाले हैं ।"

यह सुनकर मैं बहुत ही चकित हुई और बोली कि, "ओह ! इतनी देर तक मैं सोती रही ! ! !"

इसपर उस कांस्टेबिल ने कहा,—"नहीं, दुलारी ! तुम रात को शायद सुख से न सोई होगी; क्योंकि मैं तीन बजे से तुम्हारे पहरे पर हूं । इतनी देर में मैंने क्या देखा कि, 'तुम बड़ी बेचैनी के के साथ बार बार करवटें बदलती और बराबर बर्राती रहीं !' हाय, तुम बड़ी भारी मुसीबत में आ फंसी हो ! अब जो भगवान ही तुम्हें बचावें, तभी तुम इस बला से बच सकती हो ।"

उस भले कांस्टेबिल की ऐसी हमदर्दी से भरी हुई बातें सुनकर मैंने कहा,—"अच्छा, भाई ! अब तो मैं आ ही फंसी हूं, इसलिये मुझे बड़े सब्र के साथ इस आपदा का सामना करना चाहिए, और इसके साथ ही यह भी देखना चाहिए कि धर्म, सत्य और परमेश्वर भी कोई चीज हैं, या नहीं ।"

मेरी ऐसी बात सुनकर उस कांस्टेबिल ने कहा,—"दुलारी,

अगर सचमुच तुम बेकसूर होगी, तो नारायण जरूर तुम्हें उबारेगा। मैं जात का राजपूत हूं और परमेश्वर पर मेरा पूरा पूरा विश्वास है। इसलिये यह बात मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि अगर तुम सचमुच बेकसूर होगी, तो परमात्मा तुम्हें जरूर इस आफत से बचावेगा।"

मैं बोली,—"भाईसाहब, मेरी बात पर तुम चाहे विश्वास करो, या न करो; पर मैं यह ठीक कहती हूं कि मैंने किसीका खून नहीं किया है। यदि हिरवा नाऊ की बात लीजाय, तो उसे भी मैंने अपने होशहवास में नहीं मारा। तुम तो वहां पर मौजूद थे, इसलिये तुमने मेरा बयान जरूर ही सुना होगा। बस, इस बात को तुम ठीक जानो कि मैंने अपने बयान में जो कुछ कहा है, उसमें झूठ का जरा भी छूआछूत नहीं है।"

यह सुनकर उस कांस्टेबिल ने कहा,—"हां, दुलारी! यह तुम ठीक कहती हो। मैं जरूर वहां पर मौजूद था और मैंने बड़े गौर के साथ तुम्हारा बयान भी सुना है। तुम्हारे बयान को सुनकर मेरा भी जी यही कहता है कि, 'जो कुछ तुमने अपने बयान में कहा है, उसमें रत्तीभर भी झूठ या बनावट नहीं है;' पर मुझ एक अदने कांस्टेबिल के समझने से होता ही क्या है? कल रात को कोतवाल साहब के पास कई लोग बैठे थे और मैं भी वहीं पर खड़ा था। उस वक्त तुम्हारे ही मामले की बात होरही थी। सो, कोतवालसाहब को तो तुम्हीं पर पूरा पूरा शक है और वे तुम्हीं को 'खूनी असामी' समझ रहे हैं। उस समय मैंने कुछ कहना चाहा था, पर अपनी हैसियत का खयाल करके मेरी हिम्मत ने मुझे कुछ कहने-सुनने से रोक दिया। मगर खैर, अब तुम अपने इष्टदेव का ध्यान करो; क्योंकि सिवाय उसके, और कोई भी इस समय तुम्हारा मददगार नहीं होसकता।"

यों कहकर उस बेचारे ने मेरी ओर बड़ी करुणा से देखा और

मैंने उससे यह पूछा,—"अच्छा, जो कुछ भगवान ने मेरे भाग्य में लिखा होगा, वही होगा। क्योंकि भाग्य के लिखे को कोई भी नहीं मेट सकता; पर तुम यह तो बताओ कि इन कोतवाल साहब की चालचलन कैसी है ?"

यह सुनकर उसने कहा,—"ओह, दुलारी! मैं तुम्हारी इस बात का मतलब भलीभांति समझ गया! सुनो, तुम किसी दूसरी बात का डर जरा भी न करो। क्योंकि ये कोतवाल साहब असामी पर तो जरा भी रहम या रियायत नहीं करते, पर चालचलन के ये बड़े अच्छे हैं। अरे, तुम्हारे बराबर की तो इन्हें दो-तीन लड़कियां हैं। इसलिये अपनी इज्जत-आबरू के वास्ते अब तुम जरा भी खौफ़ न खाओ, क्योंकि यहां पर उस तरह के दहशत की कोई बात नहीं है।"

वह इतना ही कहने पाया था कि इतने ही में नौ बजा और मेरे पहरे पर दूसरे कांस्टेबिल के आजाने से वह राजपूत कांस्टेबिल चला गया। हां, जातीबेर उसने अपने जोड़ीदार से इतना जरूर कह दिया था कि,—"देखना, शिवराम तिवारी! इस औरत से किसी किस्म की बदसलूकी न कर बैठना।"

यह सुन कर शिवराम तिवारी ने उस कांस्टेबिल का नाम लेकर यों जवाब दिया था कि,—"नहीं, रघुनाथसिंह! इस बात का तुम जरा भी अन्देशा न करो। अरे, सोचो तो सही कि इस औरत के बराबर उम्र की तो हमारी और तुम्हारी बेटियां हैं! तब भला, फिर इस आफ़त की मारी औरत से हमलोग कैसे छेड़छाड़ कर सकते हैं! इस पर एक बात और भी है, और वह यह है कि आज कोतवाल साहब ने अभी यहां पर के सब कांस्टेबिलों के नाम यह हुकुम जारी किया है कि,—"कोई भी कांस्टेबिल इस औरत के साथ किसी किस्म की भी छेड़खानी न करे।" जाओ,—दफ़्तर में जाने पर तुमको भी इस हुकम का हाल मालूम होजायगा।"

यह सुनकर रघुनाथसिंह तो चले गए और शिवराम तिवारी ने मुझसे कहा,—"दुलारी, मैं तुम्हारी इस कोठरी की बगलवाली कोठरी का दरवाजा खोल देता हूं, उसमें जाकर तुम झटपट अपने जरूरी कामों से निवट आओ। उस कोठरी में दो औरतें मौजूद हैं, उनसे तुम्हें जरूरत की सब चीजें मिल जायंगी।"

यों कहकर शिवरामतिवारी ने मेरी कोठरी की बगलवाली एक कोठरी का दरवाजा खोल दिया। तब मैं उस (दूसरी) कोठरी में गई और उन औरतों की मदद से आध घण्टे में सब बातों से निश्चिन्त होकर अपनी कोठरी में लौट आई। मेरे आते ही उस (दूसरे) दरवाजे को शिवरामतिवारी ने बन्द कर दिया।

बस, इतने ही में दस का घण्टा बजा और शिवराम तिवारी ने मुझसे यों कहा,—"अब दरोगाजी आवेंगे और तुमको इस कोठरी से निकाल कर उस जगह ले जायंगे, जहां पर तुम रसोई खाओगी।"

मैं उस कांस्टेबिल अर्थात् शिवराम तिवारी की इस बात का जवाब दिया ही चाहती थी कि एक खूब लम्बे-चौड़े जवान मेरी कोठरी के आगे आ और ताले में ताली डाल कर उसे घुमाते हुए यों बोले,—"दुलारी, रसोई खाने चलो।"

यह सुन कर मैंने कहा,—"नहीं, साहब! मैं ब्राह्मण की लड़की हूं, इसलिये रसोई असोई मैं किसीके हाथ की नहीं खा सकती।"

वे बोले,—"अरे, सुनो! यहां भी कनौजिया ब्राह्मन ही रसोई बनाता है, इसलिये अब जल्दी करो और चल कर झटपट रसोई खा आओ। आज शुक्रवार है और कल आखिरी सनीचर है। फिर परसों ऐतवार छुट्टी का दिन है। इसलिये तुम सोमवार के दिन मजिस्टर साहब के रूबरू पेश की जाओगी।"

यह सुन कर मैंने कहा,—"यह तो आपलोगों को अधिकार

है कि मुझे जब चाहें, तब मजिस्टर साहब के सामने पेश करें; पर रही रसोई खाने की बात,—सो,साहब ! मैं रसोई-फसोई नहीं खाने की। अरे, रसोई तो क्या, मैं तो बाज़ार की पूरी, कचौरी और मिठाई भी नहीं खा सकती।"

यह सुन और खूब ज़ोर से हंस कर दरोगाजी ने कहा,—"अच्छा ! तुम तो खासी ' बाजपेइन ' मालूम देती हो ! अजी बी ! जो तुम इतनी परहेज़दार थीं, तो फिर तुमने यहां तक आने की तकलीफ ही क्यों उठाई ?"

उन महाशय की ऐसी बेढंगी बातें सुन कर मैं कुढ़ गई और मैंने उनसे यों कहा,—"सुनिए, साहब ! मैं आपके साथ व्यर्थ बकवाद करना नहीं चाहती। सो, यदि आपको मुझे कुछ खाने-पाने को देना हो तो बिना मीठे का सेर भर कच्चा दूध मंगवा दें; और जो न देना हो तो वैसा कहें; क्योंकि मैं इस जगह रह कर सिवा दूध के, और कुछ भी खाने की चीज़ नहीं छूऊंगी।"

मेरी बात सुन और ताले में से ताली निकाल कर वे तो भुनभुनाते हुए चले गए और मैंने शिवराम तिवारी से पूछा,—"क्या येही दरोगाजी हैं ?"

इस पर उसने—"हां"—कह कर यों कहा,—"दुलारी ! तो क्या, तुम सिवा दूध के, और कुछ भी न खाओ-पीओगी ?"

मैं बोली,—"नहीं, भाई ! अब, जब तक मैं इस आफत से छुटकारा न पाऊंगी, तब तक सिवा दूध के, दूसरी कोई भी चीज़ नहीं खाऊंगी। हां, पानी के लिये लाचारी है।"

इस पर उसने कहा,—"लेकिन दूध का मिलना तो कठिन है!"

मैं बोली,—"अच्छा, खाली पानी तो मिलेगा ?"

वह कहने लगा,—"भला, सिर्फ पानी पी कर कै दिन तक रह सकोगी ?"

मैं बोली,—"जब तक दम में दम है, तब तक मैं केवल

जल पीकर भी रह सकती हूं। क्या तुम ब्राह्मण होकर यह बात अपने जी से नहीं समझ सकते कि, 'यह स्थान मेरे खाने-पीने के लायक है'?"

इस पर वह बेचारा कुछ कहना ही चाहता था कि इतने ही में उन दरोगाजी के साथ खुद कोतवाल साहब आगए और उन्होंने बड़े क्रोध के साथ मुझसे यों कहा,—" दुलारी, अगर तुम्हें रसोई खाना हो, तो फौरन दरोगाजी के साथ चौके में जा कर रसोई खा आओ; और जो न खाना हो तो भूखी रहो। यहां कोई 'ब्रह्मभोज' या 'एकादशी' का सदावर्त्त नहीं है कि तुम्हें दूध या फलाहार दिया जायगा।"

इस पर मैंने भी कुछ कुरुख होकर यों कहा,—"जी, अच्छा, मुझे कुछ न चाहिए; क्योंकि मैं सन्तोष के साथ केवल जल पीकर ही अपना पेट भर लूंगी। क्यों,साहब !खाली जल तो मिलेगा न?"

इस पर कोतवालसाहब ने यों कहा,—"नहीं, अगर तुम रसोई न खाओगी, तो खाली पेट भरने के लिये पानी भी नहीं दिया जायगा।"

मैने भी इसका मुहंतोड़ यों जवाब दिया,—"तो अच्छी बात है, मैं निर्जल व्रत भी कर सकती हूं। सुनिए कोतवाल साहब! आप मुसलमान हैं; इसलिये हिन्दुओं के व्रतोपवास की बात आप क्या समझेंगे ? सुनिए और याद रखिए कि हिन्दुओं—विशेषकर ब्राह्मणों के घर की स्त्रियां चालीस-चालीस उपवास तक कर सकती हैं और उन उपवास के दिनों में वे जल की एक बूंद भी नहीं छूतीं।"

"तो बस, तुम भी निर्जल व्रत करो।" यों कहकर कोतवाल साहब दरोगाजी के साथ बड़बड़ाते हुए चले गए और उनके चले जाने के कुछ देर बाद धीरे धीरे शिवरामतिवारी ने मुझसे यों कहा,—"शाबाश, दुलारी ! आज तुमने ब्राह्मण-कुल की खूब ही

लाज रक्खी ! आह, मैं भी कुलीन ब्राह्मण हूं, पर इस पेट चण्डाल के मारे मेरा सारा ब्राह्मणपने का आचार-बिचार जाता रहा; पर तुम धन्य हो कि इस आफत में फंसकर भी अपनी कुल-मर्यादा की टेक निबाहने के लिये दृढ़ता से तयार हो ! धन्य हो, तुम धन्य हो और तुम्हारा साहस भी धन्य है ! "

बड़े नेक कांस्टेबिल शिवरामतिवारी की ऐसी बातें सुनकर मेरा रोम-रोम प्रसन्न होगया और मैंने उनसे कहा,—"भाई साहब, बिपत्ति में धीरज धरना ही तो उस (बिपत्ति) से बाजी जीतना है; इसलिये मैं बड़े धैर्य के साथ इस बिपत्ति का सामना करने के लिये तयार हूं। "

वे कहने लगे,—"तुम्हें ऐसाही करना चाहिए। अस्तु, सुनो,—मैं समझता हूँ कि तुम्हें दूध-ऊध कोई भी न देगा, इसलिये यदि तुम कहो तो मैं तुम्हें चुपचाप दूध लादूं। "

मैं बोली,—"नहीं, भाई ! मैं ऐसी चोरी का दान नहीं लिया चाहती। यदि मेरे पास पैसे होते तो मैं उन्हें देकर तुमसे जरूर चुपचाप दूध मंगवा लेती; पर मेरे पास तो इस समय एक फूटी कौड़ी भी नहीं है; इसलिये तुम्हारा यह गुप्तदान मैं किसी तरह भी नहीं लिया चाहती। "

यह सुनकर शिवरामतिवारी चुप होगए और मैं उसी सांसतघर में बैठी बैठी अपने दुर्भाग्य को कोसने लगी। उस समय तरह तरह के खयाल मेरे मन में उठते और धीरे धीरे बिलाते जाते थे।

मैंने सोचा कि मेरा एक दिन तो वह था, जब मेरे माता-पिता जीते थे; और एक दिन यह है कि सात-सात खून के अपराध में पकड़ी जाकर मैं इस कालकोठरी में बन्द की गई हूं ! बस, देर तक मैं इसी बात पर रोती-कलपती रही; इसके बाद जब पिता-माता के लाड़-चाव का ध्यान मुझे हो आया, तब तो मेरा हिया

ऐसे जोर से धड़कने और फटने लगा कि उसका हाल मैं किसी तरह भी अब नहीं कह सकती । हाय, मैं ऐसी अभागी हूँ कि मेरे पिता और माता के कुल में अब सिवा मेरे, और कोई न रहा !!! एक दूर के नाते के चचा हैं, पर वे इस समय कहां हैं और उन्हें मेरी इस घोर विपत्ति की कोई खबर है, कि नहीं; इसे मैं नहीं जान सकती । (१) इसी बात के सोचते-सोचते मुझे अपने मामा की बात याद आगई और उसके स्मरण होते ही मेरा सिर चकरा गया ! सुनिए, मेरे ननिहाल में एक मामा भर थे, पर दो साल हुए कि वे भी इस संसार से बिदा होगए हैं ! मेरा ननिहाल कानपुर जिले के विक्रमपुर गांव में था, पर मेरे नाना-नानी मेरे जन्म लेने के पहिले ही सुरपुर सिधार चुके थे । एक मामा भर थे, सो वे भी तीन तीन स्त्रियों के मर जाने पर गांव और घर-गृहस्थी से उदास होकर मेरे यहां आकर कुछ दिनों तक रहे थे । इसके बाद उन्होंने सरकारी फौज में नौकरी करली थी और कभी कभी, साल में एक-आध बार, दो चार दिन के लिये वे मेरे यहां आजाया करते थे । वे जब मेरे यहां आते थे, तब अपनी तलवार और बन्दूक भी साथ लाते थे । बस, इसी समय में मैंने अपने मामा से तलवार और बन्दूक चलाना सीखा था । यदि मुझे बन्दूक चलानी न आती तो मैं उस समय दियानतहुसेन आदि छओं कांस्टेबिलों को बन्दूक दिखला कर डरवाती ही कैसे ? यहां पर इतनी और भी सुन लीजिए कि यदि उस रात को मुझे कोई कांस्टेबिल छेड़ता, तो,—या तो मैं उसे ही गोली मार देती, या आपही अपने कलेजे में गोली मार कर मर जाती । क्योंकि मैं ऐसा

(१) पाठक महाशयों को समझना चाहिए कि दुलारी की भेंट भाई निहालसिंह से जेल में हुई थी । इसलिये अपने चचा के विषय में दुलारी ने जो ऐसा सोचा था, वह कोतवाली की बात है ।

समझती हूँ कि खयों के लिये अपमानित होने की अपेक्षा मर-जाना करोड़ गुना अच्छा है ! अस्तु ।

बस, इसी तरह के बहुतेरे खयालों में कितनी देर तक मैं उलझी रही, यह तो अब मुझे नहीं याद है, पर इतना जरूर स्मरण है कि मैं उन्हीं खयालों में देर तक डूबती-उतराती रही। इसके बाद कब मैं लुढ़क कर नींद में बेसुध होगई, इसकी मुझे सुधि नहीं है।

योंहीं दो पहर की सोई-सोई मैं रात के नौ बजे तक बेखबर पड़ी रही। फिर जब रघुनाथसिंह कांस्टेबिल ने मुझे जगाया, तब कहीं मेरी नींद खुली और तभी उनकी जबानी मुझे यह मालूम हुआ कि रात नौ के ऊपर पहुंच चुकी है !

भली भांति जब मेरी नींद की खुमारी दूर होगई और मैं उठ कर मजे में बैठ गई, तब रघुनाथसिंह ने मुझसे यों कहा,—"दुलारी, शिवरामतिवारी की जबानी मुझे यह मालूम हुआ है कि आज तुमने कुछ भी नहीं खाया-पीया है ! अरे, इतना हठ तुम क्यों करती हो ? यह तो कोतवाली है ! सो, यहां पर आकर और फिर यहां से जेल के अन्दर जाकर सभी जाति के लोग रसोई खाते हैं । फिर तुम इस कायदे से कैसे बरी होसकती हो ? मगर खैर, तुम्हारे जो जी में आवे सो करना, लेकिन इस वक्त अगर तुम मंजूर करो तो मैं तुम्हें दूध ला दूं ?"

इसपर मैंने यों कहा,—"सुनो भाई, जब कि थाने के अफसर को ही इस बात का कोई खयाल नहीं है कि, 'उनका कोई कैदी भूखा-प्यासा है,' तब तुम इतनी मगज-पच्ची क्यों कर रहे हो ? देखो, और साफ-साफ सुन लो कि मैं यहां, या जेल जाने पर भी, सिवा दूध के, और किसी चीज को भी ग्रहण नहीं करूंगी। इसमें चाहे मुझे भूखी ही क्यों न मरजाना पड़े, पर ब्राह्मण-कुमारी होकर मैं आचार-विचार की यों हत्या कभी भी नहीं करने की।"

यह सुनकर उन्होंने कहा,—"अच्छी बात है; तुम्हारे जो जी में आवे, सो करना; पर इस समय तो तुम थोड़ा सा दूध पी लो।"

मैं बोली,—"तुम अपने अफसर से पूछकर देरहे हो?"

वे बोले,—"अरे राम, राम! भला ऐसा भी कभी होसकता है? मैं तुम्हें चोरी से दूध ला दूंगा, उसे तुम चुपचाप पीजाना और उसकी बात सिवाय शिवरामतिवारी के, और किसी तीसरे शख्स के आगे जाहिर मत करना।"

मैं बोली,—"तो बस, भाई! अब तुम कृपा करके ऐसी बातों को बन्द करो, क्योंकि मैं चोरी का काम करके अपने ईमान में बट्टा नहीं लगाना चाहती।"

मेरी ऐसी बात सुनकर बेचारे रघुनाथसिंह बहुत ही पछताने और हर तरह से मुझे समझाने लगे; पर जब मैं किसी तरह भी न मानी, तब उन्होंने यों कहा,—"अच्छा, पर थोड़ा सा पानी तो पी लो।"

यह सुनकर मैंने कहा,—"हां, पानी पीने में कोई हर्ज नहीं है, पर उसे मैं पी क्योंकर सकूंगी?"

उन्होंने कहा,—"मैं एक केले के पत्ते में धार बांधकर बाहर से पानी दूंगा, तुम अंजुली लगाकर पी लेना।

यों कहकर वे एक लोटा जल ले आए। बाद इसके, उन्होंने केले के पत्ते में धार बांधी और मैं अंजुली लगाकर पवित्र गङ्गाजल पीने लगी। जब सारा लोटा, जिसमें डेढ़ सेर से कम जल न होगा, खाली होगया, तब रघुनाथसिंह ने यों कहा,—"क्यों, प्यास मिटी, या और लाऊं?"

मैं बोली,—"नहीं, अब बस करो भाई! इस जलदान के पलटे में भगवान तुम्हारा भला करेगा, यही मेरी असीस है।"

"तुम्हारी असीस मैं सिर-माथे चढ़ाता हूं।" यों कहकर वे जाकर लोटा रख आए और कन्धे पर बन्दूक धरे घूम-घूम कर मेरी कोठरी का पहरा देने लगे।

अठारहवां परिच्छेद ।

कोतवाल ।

"कामक्रोधमदास्थैर्यलोभमोहविवर्जिताः ।
नियोज्या जनरक्षार्थं नृपेण सुजना जनाः ॥ "

(व्यासः)

वे तो यों अपनी चाकरी बजाने लगे और मैं बैठी बैठी अपने खयालों के साथ लड़ने-झगड़ने लगी ! कई घंटे तक लगातार अच्छी तरह सो लेने के कारण फिर मुझे पिछली रात तक नींद न आई और मैं अपने तरह तरह के उधेड़-बुन में उलझी रही । फिर रघुनाथसिंह से मेरी कोई बातचीत नहीं हुई और जब तीन बजने के बाद वे पहरा बदला कर चले गए, तब मैं भी लेट रही और थोड़ी ही देर में फिर सो गई ।

वह दिन और रात तो योंहीं बीते, और दूसरा दिन आया ! इस (दूसरे) दिन, जब मैं अपने मामूली कामों से निश्चिन्त होगई, तब वही दरोगाजी आकर मुझे कोतवालसाहब के एक निराले कमरे में लेगए । वहां जाकर मैंने क्या देखा कि, 'एक तख्तेपोश के ऊपर तीन-चार मुन्शी खाता खोले हुए बैठे हैं और कोतवालसाहब दो-तीन तकिये बगल में दबाए हुए हुक्का गुड़गुड़ा रहे हैं ! '

मेरे जाते ही उन्होंने मेरी ओर देखकर यों कहा,—"क्यों दुलारी ! ये सातों खून तुम्हारे ही किए हुए हैं न ? "

मैंने यों कहा,—"नहीं, साहब ! इन खूनों के बारे में जो कुछ सच्ची बात थी, वह मैं अङ्गरेज अफसर के सामने लिखा चुकी हूं और उसे आपही लिख भी चुके हैं । "

मेरी बात सुनकर वे फिर यों कहने लगे,—" सुनो, दुलारी ! मैं तुम्हारी बिहतरी के लिये तुमसे यह कहता हूं कि अगर तुम इन सातों खूनों का करना कबूल कर लोगी, तो मैं तुम्हें मजिष्ट्रेट से

कह-सुन-कर छुड़वा दूंगा। मगर जो तुम यों हीला-हवाला करोगी, तो इन सातों खूनों का सारा इलजाम तुम्हारे ही सिर मढ़ा जायगा और तुम खून करने के जुर्म में फांसी पर लटकाई जाओगी।"

इसपर मैंने यों कहा,—"तो क्या आप मुझसे झूठ कहवाया चाहते हैं ?"

वे बोले,—"नहीं; झूठ तो तुम पहिलेही कह चुकी हो। इस लिये अब सच कहो और अपने कसूर को सीधी तरह कबूल कर लो।"

मैं बोली,—"नहीं, साहब! मैंने अपने बयान में जो कुछ लिखवाया है, वही सही है। बस, उसके अलावे और मैं कुछ भी कहना नहीं चाहती।"

वे बोले,—"मैं देखता हूं कि तुम सीधी तरह राह पर आने वाली नहीं हो! सुनो, बी, दुलारी! अगर तुम सीधी तरह इन सातों खूनों के करने की बात कबूल न करोगी, तो मैं तुम्हें बड़ी बड़ी तकलीफें दूंगा और तुम्हारी सारी मक्कारी भुला दूंगा। इसलिये अब तुम्हारी इसीमें बिहतरी है कि तुम मेरे कहने को मानो और भली लड़की की तरह अपने कसूर को कबूल कर लो।"

मैं बोली,—"कोतवालसाहब! आप मेरे पिता की उम्र से भी बड़े हैं और मैं समझती हूं कि आपको भी बाल बच्चे होंगे; इसलिये मेरी हाथ जोड़ कर आपसे बारबार यही बिनती है कि आप अपनी सफेद डाढ़ी और मेरी बिपत्ति का खयाल करके जरा अपने खुदा से डरें और मुझ आफत की मारी पर नाहक मनमाना जुल्म न करें। यह बात शायद आप जरूर समझते होंगे कि, 'जहां आपके बाप, दादे और परदादे गए, वहीं एक दिन आपको भी जरूर ही आना पड़ेगा; फिर चार दिन की जिन्दगी में आप अपनी बेटी के समान मुझ दईमारी को इस तरह क्यों पीसना चाहते हैं? क्या आपका यही धर्म है और क्या न्यायवती सरकार ने इसीलिये आप

को इस पद पर बैठाया है कि आप मुझ सी एक अदनी और अनाथ लड़की पर यों मनमाना जुल्म करें ? इसलिये आप कृपाकर अपने अत्याचार की मात्रा को अब अधिक न बढ़ाइए और मुझे हाकिम के आगे पेश कर दीजिए। फिर जो मेरे करम में बदा होगा, वही अदा होगा।"

मेरी ऐसी विनती सुनकर वे मारे क्रोध के इस कदर उबल उठे कि मैं एकदम घबरा गई और मन ही मन भगवती का स्मरण करने लगी।

उन्होंने लाल लाल आंखों से मेरी ओर घूरकर मेरी बगल में खड़े हुए उन्हीं दरोगाजी से यों कहा,—"दरोगाजी, यह बड़ी बदमाश औरत है, इसलिये एक सादे कागज पर इसके हाथ के अंगूठे का निशान लेलो और इस शैतान की बच्ची को उसी कोठरी में बन्द कर आओ।"

बस, इतना सुनते ही दरोगाजी ने मेरे अंगूठे में स्याही लगाकर बरजोरी उसकी छाप एक कोरे कागज पर लेली और मुझे अपने साथ चलने का इशारा किया।

उस इशारे को समझकर जब मैं चलने लगी, तब न्यायमूर्त्ति कोतवाल साहब ने दरोगाजी से यों कहा कि,—"देखना, दरोगाजी ! इस पाजी औरत को कोई शख्स कुछ भी खाने-पीने की चीजें न देने पावे। बस, जहां यह दो-चार रोज भूखी रक्खी गई कि एक दम सीधी होजायगी और तब जो कुछ इससे कहा जायगा, बिला उज्र उसे मान लेगी।"

इस पर—"बहुत अच्छा"—कहकर दारोगाजी मुझे उसी कोठरी में लाकर बन्द कर गए और जाती बार मेरे पहरेदार से एक अपना भी यह हुकुम देते गए कि,—"देखना, लछमन दुबे ! यह औरत जरा भी सोने न पावे। क्योंकि अगर यह सोने न पावेगी, तो झखमार कर कोतवाल साहब के हुक्म-बमूजिब अपना

बयान लिखावेगी। "

यों कहकर दरोगाजी चले गए और उनके जाने पर उस कांस्टेबिल (लछमन दुबे) ने मेरी ओर घूर कर यों कहा,—"क्यों, तुमने दरोगाजी का हुकुम सुना न ? इसलिये खबरदार, सोना मत; नहीं तो बाहर से मैं तुम्हारे ऊपर ठढा पानी गेरूंगा। "

इस पर मैंने यों कहा,—" अच्छा, भइया ! जब मैं सो जाऊं, तब तुम जरूर मुझ पर पानी डालना। "

यों कहकर मैं चुप होगई और मांढ़-बेढ़ कर अपनी जगह पर बैठी हुई अपने भाग्यचक्र को सराहने लगी। वह कांस्टेबिल ठहर ठहर कर बार बार मुझे टोकता, पर जब मेरा जवाब सुन लेता, तब कंधे पर बन्दूक धरे हुए फिर टहलने लगता। योंहीं जब तीन बजे उसकी जगह पर दूसरा पहरेदार आया, तो वह भी मुझे जागती रहने के लिये बार बार कहने लगा। मैं भी उससे हर बार यही कहती गई कि,—" नहीं, भाई ! मैं सोती नहीं हूं, बल्कि तुम्हारे सामने ही बैठी हुई हूं। "

इस तरह रात के नौ बजे के बाद रघुनाथसिंह मेरे पहरे पर तैनात हुए और थोड़ी देर तक इधर उधर घूम-फिर और देख-भाल कर बहुत ही धीरे से उन्होंने मुझसे यों कहा,—" दुलारी, आज जो कुछ हुआ है, वह सब मुझे मालूम है। आज जिस वक्त तुम कोतवाल साहब के सामने पेश की गई थीं और उनके साथ जो कुछ तुम्हारी बातचीत हुई थी, वह सब मैंने अपने कानों से सुनी थी; क्योंकि उस समय मैं भी उस कमरे के बगलवाली कोठरी में खड़ा हुआ था। सुनो, एक कोरे कागज पर जो तुम्हारे अंगूठे का निशान ले लिया गया है, उसका मतलब यह है कि अब उस कागज पर कोतवाल साहब अपने खातिरखाह तुम्हारा बयान लिख कर मजिस्ट्रेट के आगे उसे पेश करेंगे और अपने बयान में यों कहेंगे कि, ' यह इजहार दुलारी ने अपनी रजामन्दी से लिखवाया है और

इस (कागज) पर इसी (दुलारी) ने अपने अंगूठे का निशान भी कर दिया है ! ' लो, सुना न तुमने ! पर इस बात को तुम अपने मन में ही रखना और इस पोशीदा बात को किसीके आगे जाहिर मत कर बैठना । सुनो, एक बात मैं तुम्हें समझाए देता हूं कि तुम उस कागज की लिखावट सुनकर जरा भी न घबराना और मजिष्ट्रेट से साफ साफ यह कह देना कि, ' कोतवाल ने जबरदस्ती मेरे अंगूठे का निशान एक कोरे कागज पर करा लिया था । उसके बाद इस (कोतवाल) ने, जो कुछ इसके मन में आया, इस कागज में लिख मारा है । ' यों कहकर तुम अपना वही बयान मजिष्ट्रेट के आगे देना, जो कि तुमने पुलिस के एक अंगरेज अफसर के सामने, अभी, उस दिन, दिया है । क्यों, मेरी इस बात को तुम याद रक्खोगी न ? "

यह सुन और मन ही मन उस नेक कांस्टेबिल को बहुत बहुत असीस देकर मैंने यों कहा,—" हां, भाईसाहब ! तुम्हारी इस बात को मैं मरते दम तक कभी भी न भूलूंगी । इस समय मेरे काम की इस खबर को देकर तुमने मेरी बड़ी भलाई की है ! परमेश्वर तुम्हारा भला करे ! मैं तुम्हारी इस नेक सलाह को कभी भी न भूलूंगी और मजिस्ट्रेट के आगे अपना वही बयान दूंगी, जो उस दिन उस अंगरेज के सामने मैंने दिया है । तुमने यह पते की बात मुझे बताई, यह बहुत ही अच्छा हुआ । यों तो मैं मजिष्ट्रेट के सामने भी वही बातें कहती, जो मैंने उस अंगरेज अफसर के सामने कही थीं, पर फिर भी तुमसे इस खबर को पाकर मैं और भी होशियार होगई हूँ । अजी, इतना तो मैं उसी समय समझ गई थी, जब जबरदस्ती मेरे अंगूठे का निशान एक कोरे कागज पर लिया गया था कि, ' ये हजरत कोतवाल साहब अब इस कोरे कागज को अपने मन-मानता रंगेंगे और उसे मेरा दिया हुआ इजहार बतावेंगे'; पर फिर भी तुमने जो मुझे यह अनूठी और सच्ची खबर

सुनाई, इसके लिये मैं तुम्हें हृदय से असंख्य धन्यवाद देती हूँ।”

यों कह कर मैंने कृतज्ञता-भरी दृष्टि उन पर डाली और फिर यों कहा,—“क्यों, भइया! इस पुलिस के अनोखे महकमे में तुम्हारे ऐसे कितने देवता हैं?”

मेरी बात सुन कर उस बेचारे ने मुहं फेर कर अपनी आंखें पोछीं और यों कहा,—“दुलारी, इस महकमे की बात तुम कुछ न पूछो। अरे, यहां रोज ही ऐसे ऐसे शैतान आते हैं कि जिनके सबब पुलिस और उसके अफसरों को बड़ा हैरान व परेशान होना पड़ता है। बस, असल बात यही है कि रात-दिन शोहदे-बदमाशों से वास्ता पड़ते रहने के सबब पुलिस और उसके अफसरों का ऐसा ही ढंग होजाता है और उन्हें सबके साथ वैसा ही बरताव करना पड़ता है, जिसकी कि उन्हें आदत पड़ी होती है। सुनो, ये कोतवाल साहब बुरे आदमी नहीं हैं;पर एक तो रात दिन पापियों के साथ बातचीत करते करते इनकी आदत ही ऐसी पड़ गई है, दूसरे एक बात और भी है और वह यह है कि पुलिस के बड़े साहब की तरफ से इस बात की पूरी पूरी ताकीद हुई है कि, ‘इन सात खूनों का जल्द पता लगा कर खूनी को मजिष्ट्रेट के आगे पेश करना चाहिए।’ अब तुम्हीं सोचो, दुलारी! कि इन सात सात खूनों के सच्चे अपराधी अब कहां जिन्दे हैं? इस लिये कोतवाल साहब को तो अब एक न एक असामी चाहिए ही। सो, जब कि तुम आपसे आप ही इस जंजाल में आ फंसी हो, तो फिर भला ऐसा अच्छा मौका वे कब छोड़ सकते हैं! अब रही यह बात कि अगर तुम्हारे ऐसे ही पाटी से भाग होंगे, तभी तुम इस बकाबू से बच सकोगी; क्योंकि तुम बड़े बेमौके आ फंसी हो!”

यों कह कर रघुनाथसिंह इधर उधर टहलने लगे और दो-चार फेरे करके फिर वे मेरी कोठरी के आगे आकर ठहर गए और कहने लगे,—“दुलारी, क्या आज भी तुम दूध न पीओगी?”

मैं बोली,—"नहीं, भाई! मेरी कुछ भी खाने-पीने की इच्छा या रुचि नहीं है। दूध तो क्या, आज तो पानी पीने को भी जी नहीं चाहता।"

वे बोले,—"तो इस तरह और के दिन यों हीं बिताओगी?"

मैं बोली,—"जबतक नारायण बितावेगा, तबतक बिताऊंगी। और जो बिना कुछ खाए-पीए मुझसे नहीं ही रहा जायगा, तो तुमसे कहूंगी ही। तब फिर जो कुछ तुम कहोगे, वही मैं करूंगी; पर अभी तुम मुझे क्षमा करो और खाने-पीने की जिकिर को बन्द कर रक्खो।"

इसपर उन्होंने यों कहा,—"अच्छी बात है, क्योंकि तुम्हारी मरजी के खिलाफ मैं भी कुछ नहीं किया चाहता। अच्छा, अब तुम आराम से सोजाओ; क्योंकि मेरे पहरे में तुमको कोई भी न जगावेगा। मेरे पहरे के बाद शिवरामतिवारी का पहरा होगा और वे भी तुमको कोई तकलीफ न देंगे।"

यह सुनकर मैंने उनसे पूछा,—"क्यों, भाई! दरोगाजी के नादिरशाही हुक्म की भी तुम्हें कुछ खबर है?"

वे बोले,—"खूब खबर है। वे ऐसे ही हजरत हैं! उनकी लीला तुम सुनोगी, तो दङ्ग रह जाओगी। खैर, उस बात को छोड़ो; क्योंकि अब दरोगाजी सुबह के पेश्तर यहां नहीं आने के। इसलिये अब तुम रातभर खूब आराम के साथ सो लो, क्योंकि फिर कल दिनभर तुमको सोना नसीब न होगा। इसकी वजह यह यह है कि दिन को दूसरे कांस्टेबिलों का पहरा होगा। हां, कल रात को भी ईश्वर ने चाहा तो मेरा और शिवरामतिवारी का ही फिर पहरा होगा। यदि ऐसा न होसका और कल रात को अगर किसी दूसरे कांस्टेबिल का पहरा हुआ, तो शायद तुम्हें फिर सोना नसीब न होगा। इसलिये अब बेफिक्री के साथ तुम सोओ।

यह सुन और उन्हें बार बार असीस देकर मैं लेट गई और

नींद-महारानी ने थोड़ी ही देर में मुझे अपनी मुलायम गोद में सुला लिया।

सारी रात मैं सुख से सोती रही और इस रात को मुझे कोई भी सपने-सपनै नहीं दिखलाई दिए। इसकी वजह यह है कि जब रात को खूब गहरी नींद आती है, तब सपने नहीं दिखाई देते। अस्तु, सारी रात तो मैं बेखबर पड़ी हुई सोया की, पर सबेरे मुझे ऐसा जान पड़ा कि मानो कोई छड़ी से मेरे पैरों में धीरे-धीरे ठोकरें दे रहा हो! यह जान कर मैं चट उठ बैठी और आंखें मल कर मैंने क्या देखा कि, 'शिवरामतिवारी मेरी कोठरी के आगे खड़े हुए हैं!'

मैं यह देख कर कुछ कहना ही चाहती थी कि उन्होंने अपनी नाकपर उंगली रखकर मुझे चुप रहने का इशारा किया और बहुत ही धीरे-धीरे यों कहा,—"अब, सब खुमारी दूर करके होशियार होजाओ, क्योंकि दरोगाजी कोतवाली में आगए हैं।"

यह सुन कर मैंने अपनी आंखें खूब मल डालीं और धीरे-धीरे नींद की खुमारी दूर की। फिर जब शिवरामतिवारी मेरी कोठरी के आगे आकर ठहरे, तब मैंने उनसे यह पूछा,—"कै बजने का समय है?"

वे बोले,—"अब आठ बजनेवाले हैं। क्यों, रातभर तो तुम मजे में सोई थीं न?"

मैं बोली,—"हां, भाई! तुमलोगों की दया से रात को मैं बड़ी गहरी नींद में सुख से सोई थी। अब मेरा जी खूब हलका होगया है, इसलिये आज आधीरात तक मैं मजे में जाग सकूंगी।"

वे बोले,—"अच्छी बात है। और फिर आधीरात तक जागने की जरूरत ही क्या है? क्योंकि दरोगाजी रात को आठ बजते-बजते यहांसे एक रण्डी के यहां चले आते हैं और वहीं शराब-कबाब में सारी रात डूबे रहते हैं। बस, सुबह को वे यहां आते

हैं और सारे दिन तूफान मचाया करते हैं ! ये जरा कोतवाल-साहब के मुहं लग गए हैं और उनका बहुतेरा काम भी बड़ी मुस्तैदी के साथ कर दिया करते हैं, इसीलिये यहांपर जरा इनकी बड़ी चलती है। यों तो ये बड़े नाकिस आदमी हैं, पर कोतवाल साहब के डर से कोई भी इनके आगे ओठ नहीं फड़का सकता। लो, अब तुम दोपहर तक बेफिक्री के साथ आराम कर सकती हो, क्योंकि अभी दरोगाजी नाश्ता-वाश्ता करके किसी मामले की तदारुक करने के लिये कहीं बाहर चले गए हैं। बस, अबके गए-गए, ये दोपहर के पहिले यहां कभी न आवेंगे।"

यह सुन कर मैंने कहा,—"नहीं, भाई ! अब मुझे ज़ादे आराम करने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि मैं खूब अच्छी तरह रात को सो चुकी हूँ।"

यों कहकर मन ही मन मैं भगवान का स्मरण करने लगी। बस, योंहीं देखते-देखते सारा दिन बीत गया और संझा हुई। आज मेरे पास खाने-पीने की बात पूछने कोई भी नहीं आया था। हां, एक बात आज जरूर हुई थी। वह यह कि आज शिवरामतिवारी के बाद जो कांस्टेबिल मेरे पहरे पर मुकर्रर हुआ था, वह बहुत ही कमीना था। यह तो मैं नहीं जान सकी कि वह हिन्दू था, या मुसलमान; पर था वह बड़ा ही हरामजादा ! वह रह-रह कर मेरी कोठरी के आगे आकर खड़ा होजाता, मूछों पर बल दे-दे कर मुझे घूरता, तरह-तरह की छेड़छाड़ करता और हंस-हंस कर मेरे चेहरे की ओर टकटकी बांध कर निहारने लग जाता था ! उसकी ऐसी चाल-ढाल देख कर मन ही मन मैं जली-भुनी जाती थी, पर लाचार थी। खैर, राम-राम करके रात के नौ बजे और रघुनाथसिंह मेरे पहरे पर आए।

योंहीं और भी तीन घण्टे बीते और जब बारह बज गए, तब उन्होंने मुझसे यों कहा,—" क्यों, दुलारी ! आज तुम अभीतक

सोई नहीं ?"

मैं बोली,—"नहीं, भाई ! आज तो मुझे नींद ही नहीं आती ! क्या करूं, लाचार हूं। हां, यह तो कहो कि आज तुम्हारे पहिले मेरे पहरे पर कौन था ?"

वे बोले,—"वह दरोगाजी का साला था। उसका नाम अमीर है और वह बड़ा ही पाजी आदमी है। क्यों, उस शैतान ने तुम्हारे साथ कुछ छेड़छाड़ की थी, क्या ?"

मैं बोली,—"हां, कुछ की तो थी ! पर खैर, अब उस बात को जाने दो और यह कहो कि इस समय तुम मुझे थोड़ा सा गङ्गाजल पिला सकते हो ?"

'हां, अभी लाता हूं"—यों कह कर वे वहांसे चले गए और थोड़ी ही देर में शिवरामतिवारी के साथ लौट आए। तिवारीजी के एक हाथ में जल-भरा लोटा और दूसरे हाथ में एक केले का पत्ता था। सो, उन्होंने उस पत्ते में धार बांधी और मैंने अंजुली लगा कर बात की बात में सारा लोटा खाली कर दिया ! ! !

बाद इसके, वे खाली लोटा लिए हुए चलेगए और रघुनाथसिंह टहल-घूम-कर पहरा देने लगे। मैं भी थोड़ी देर तक बैठी हुई तरह तरह के सोच-विचार करती रही। इसके बाद लेट गई और दो ही चार करवटों के बाद नींद ने मुझे धर दबाया।

सुबह जब मेरी नींद खुली, तब मैंने क्या देखा कि मेरी कोठरी के जङ्गले के पास वही अमीर कांस्टेबिल खड़ा हुआ मुसकुरा रहा है ! ! !

मुझे जागी हुई देख कर उस शैतान ने यों कहा,—"दुलारी, अगर तुम जरा सा हंसकर मेरी ओर देख लो, तो आज रात को मैं तुम्हें इस कोठरी से निकाल कर कहीं दूसरी पोशीदा जगह में ले भागूं और तुम्हें इस खून के झमेले से बचा लूं।"

सबेरे-सबेरे उस मुंए की ऐसी बात सुन कर मैं इतने जोर से

चीख उठी कि वहां पर कई कांस्टेबिल आकर जमा होगए और खुद कोतवाल साहब भी आ पहुंचे !

फिर कोतवाल साहब ने मुझसे चिल्लाने का कारण पूछा, तब मैंने उस कमीने अमीर की सारी बदमाशियों का खुलासा हाल उन्हें सुना दिया। यह सुन कर कोतवाल साहब ने उसे दो-चार धौल लगा कर वहांसे दूर किया, मेरे पहरे पर किसी दूसरे कांस्टेबिल को मुकर्रर किया और मुझसे यों कहा,—" दुलारी, अब तुम्हारे साथ कोई भी शरारत न करेगा।"

यों कह कर वे चले गए और मैं धरती की ओर मुहं करके आंसू गिराने लगी।

बस, इस बात को अब तूल न देकर मैं यहां पर इतना ही कहना चाहती हूं कि जब तीन दिन तक मैंने कोरा उपवास किया, तब चौथे दिन कोतवाल साहब ने मुझे कच्चा दूध मगवा दिया। उस दिन सोमवार था। सो, अपने मामूली कामों से निबट, नहा-धो और दूध पीकर मैं मजिष्ट्रेट साहब के सामने पेश होने के लिये कचहरी पहुंचाई गई।

पर, किस तरह मैं कोतवाली से रवाने हुई और फिर किस भांति मजिष्ट्रेट साहब के सामने हाजिर की गई, इसे भी सुन लीजिए। मैंने अपने पहरेदारों के मुहं यों सुन रक्खा था कि, 'मुझे पैरोंमें बेड़ी और हाथोंमें हथकड़ी पहिन कर कोतवाली से कचहरी तक पावं-प्यादे जाना पड़ेगा !' यह सुन कर एक बेर तो मैं मारे लज्जा के मुर्दा सी होगई थी; पर फिर मैंने मन ही मन खूब सोच-बिचार कर अपने जी को इस तरह ढाढ़स दिया था कि, 'अरे मन! जब कि मैं खून के अपराध में पकड़ी जाकर हाकिम के सामने पेश की जाती हूं, तब फिर मुझे लज्जा किस बात की है ! अरे, स्मशान में भी कभी लज्जा रह सकती है !' अस्तु, यही सब सोच-पांच सोच कर मैं मन मार बैठी थी, पर अन्त में यह सब कुछ भी न

हुआ और परमेश्वर ने मेरी इतनी दुर्दशा नहीं होने दी।

तो फिर क्या हुआ? सुनिए, कहती हूँ। नौ बजते-बजते, जब मैं सब कामों से निश्चिन्त होगई, तब कोतवाल साहब ने मुझे उस हवालात-घर से निकाला और मेरे दोनों हाथों को मिला कर हथकड़ी भर दी। इसके बाद वे मुझे अपने साथ ले चले। मैं सिर नीचा किए हुई उनके साथ चली और कोतवाली के फाटक से बाहर निकल कर एक किराए की पालकी-गाड़ी पर सवार कराई गई। सामने की गद्दी पर कोतवाल साहब बैठ गए और उनके सामने वाली बैठक पर उनका इशारा पाकर मैं बैठ गई। बाहर पीछे की तरफ दो कांस्टेबिल खड़े होगए और एक तीसरा कोचवान के बगल में जा बैठा। इस ठाठ से मैं कचहरी चली, पर उस समय मैंने अपनी आंखें नीची कर ली थीं।

जब वह गाड़ी कुछ दूर निकल गई, तब कोतवाल साहब ने मुझसे यों कहा,—"दुलारी, तुम जरा मेरी तरफ देखो और जो कुछ मैं तुमसे कहता हूँ, उसे खूब गौर के साथ सुनो।"

यह सुन कर मैंने कहा,—"सुनिए, साहब! आपकी तरफ देखने की मैं कोई जरूरत नहीं समझती। इसलिये आपको जो कुछ कहना हो, उसे आप कह डालिए; क्योंकि मेरे कान आपकी बातें मजे में सुन सकते हैं।"

यह सुन कर उन्होंने जरा कुढ़ कर यों कहा,—"आह, तुमने मेरे कहने का दूसरा मतलब समझा! लेकिन मेरा वह मकसद हर्गिज नहीं था; क्योंकि तुम्हारे बराबर की तो मेरी कई लड़कियां हैं! मगर खैर, अब तुमसे मुझे सिर्फ इतना ही कहना है कि जिस कागज पर मैंने तुम्हारे अंगूठे का निशान करा लिया था, उस पर इस खून के बारे में कुछ लिखा गया है। वह कागज आज मैं मजिष्ट्रेट के आगे पेश करूंगा। बस, तुमसे मुझे अब इतना ही कहना है कि उस कागज में जो कुछ लिखा गया है, उसे तुम मंजूर कर लेना

और मजिष्ट्रेट से "रहम" करने के लिये अर्ज करना। वह हाकिम बड़ा रहमदिल है, इसलिये मैं कोशिश और सिफारिश करके तुम्हें बेलाग बचा लूंगा। लेकिन जो तुमने मेरे कहने के बमूजिब अपने कसूर को कबूल न किया, तो फिर मैं तुम्हारे छुड़ाने के लिये ज़रा भी कोशिश न करूंगा। क्योंकि बगैर मेरी सिफारिश और कोशिश के, तुम्हारा छुटकारा पाना एकदम गैर-मुमकिन है।"

अरे! कोतवालसाहब की ऐसी विलक्षण बातें सुन कर मैं मन ही मन हंसी और यों कहने लगी,—"आपने जो कुछ कहा, वह बिलकुल ठीक है; पर जो मैं अब अपने को छुड़ाया न चाहूं, तो क्या करूं?"

वे बोले,—"तुम्हारी इस बात का क्या मतलब है?"

मैं बोली,—"सुनिए, कोतवालसाहब! मैं एक भले घराने की लड़की हूं। इसलिये जब कि मैं खून के कसूर में गिरफ्तार होकर इस तरह हथकड़ी पहने हुई मजिष्ट्रेट के सामने पेश की जाती हूं, तो फिर इस आफ़त से छुटने पर मुझ कुमारी कन्या को मेरे जात-वाले भला कब ग्रहण करेंगे? मेरे मां-बाप तो हैं नहीं, कि वे मुझे हर तरह से लेने और अपनाने के लिये तैयार होजायंगे। अब रही जात-बिरादरी-वालों की बात,—सो वे भला अब मुझे कब अपनी पांत में खड़ी होने देंगे? इसलिये अब इस दुर्दशा को पहुंच कर तो मैं छुटने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा समझती हूं।"

मेरी ऐसी बातें सुन कर शायद वे बहुत ही कुड़बुड़ाए और कहने लगे,—"नहीं, यह तुम्हारी सरासर गलती है। इसलिये अपने कसूर को कबूल करके तुम्हें अपने तईं ज़रूर बचा लेना चाहिए। अगर तुम जिन्दा रहोगी, तो खुदा तुमको निहायत आरामोचैन के साथ दुनियां में कायम रक्खेगा।"

यह सुन कर मैंने कहा,—"जी, अब मुझे दुनिया के आरामोचैन नहीं चाहिएं।"

इस पर वे बड़े क्रोध के साथ केवल इतना ही कह कर चुप होगए कि,—"तब तो, तेरा फांसी पड़जाना ही ठीक होगा।"

इसपर मैंने भी मनही मन हंसकर यों कहा,—"जी हां, मैं भी इसे ही अच्छा समझती हूं; क्योंकि अब मुझ अभागिन को कोई भी नहीं अपनाने का।"

बस, फिर वे मुझसे कुछ न बोले। यों हीं जब गाड़ी कचहरी पहुंच कर ठहर गई, तब मैंने आंख उठाकर क्या देखा कि, 'उंगलियों के साथ हजारों आदमियों की निगाहें मेरी ओर उठ रही हैं!!!'

यह तमाशा देख कर मारे लाज के मैंने अपनी आंखें नीची कर लीं और मन ही मन भगवती को पुकारना प्रारम्भ किया।

सो, गाड़ी के ठहरने पर पहिले तो वे तीनों कांस्टेबिल नीचे उतर कर दरवाजे के आगे आ खड़े हुए, इसके बाद खुद दरवाजा खोल कर कोतवाल साहब उतरे। सबके पीछे मैं उतारी गई और वहांसे चल कर एक जंगलेदार बड़ी कोठरी में बंद की गई।

तो, यह क्यों किया गया? इसलिये कि मजिस्टर साहब के आने में तब भी कुछ देर थी। सो, जबतक कैदी उनके सामने पेश न कर दिए जाते, तबतक इसी कोठरी में रक्खे जाते थे। इसी नियम के अनुसार मैं भी उसी कोठरी में बन्द की गई। उस कोठरी में सिवाय खाली जमीन के, और कुछ भी बैठने के लिये न था। इसलिये लाचार, मैं भी उसी ठंढी धरती में बैठ गई और अपने राम को याद करने लगी! हाय, रे दुर्भाग्य! तेरी महिमा का पार कोई भी नहीं पा सकता! ठीक उसी समय बाहर से कोई गुसाईं तुलसीदास का यह भजन गा उठा कि, "करमगति टारे नाहिं टरै!" यह भजन मुझे पूरा स्मरण था, इसलिये मैं ध्यान से सुनने और मन ही मन उसे दोहराने-तेहराने लग गई थी।

उन्नीसवां परिच्छेद ।

झूठा इल्जाम ।

" स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी,
दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी ।
विधुरपि विधियोगाद् ग्रस्यते राहुणासौ,
लिखितमिह ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः ॥ "
(नीतिमञ्जरी.)

एक बजने के समय मजिस्टर साहब इजलास में आकर बैठे और मैं उनके सामने पेश की गई । मैंने अपनी जिन्दगी में पहिले ही पहिल कचहरी और इजलास देखे थे, इसलिये यहांपर मैं उनका कुछ हाल लिखती; पर अदालत-कचहरी बहुतेरों की देखी हुई चीज है, इसलिये उसका वर्णन न करके अब मैं आगे बढ़ती हूं ।

हाकिम एक खूब ऊंचे तख्त के बीचोंबीच रक्खी हुई कुर्सी पर बिराजे थे और उनके बगल में लाल पगड़ी बांधे पेशकार बैठे थे । मैं उनके सामने—परन्तु कुछ दूर, दीवार से सटे हुए एक 'कठघरे' में लेजा कर खड़ी की गई थी और उस (कठघरे) के बाहर मेरे अगल-बगल दो कांस्टेबिल खड़े हुए थे । इन कांस्टेबिलों में दयावान रघुनाथसिंह या शिवरामतिवारी न थे, वरन कोई और ही थे ।

अस्तु, जब हाकिम अपना कुछ और जरूरी काम कर चुके, तब कोतवालसाहब ने उस तख्त के पास जा और हाकिम को सम्बोधन करके यों कहा,—"हुजूर, दौलतपुर में पांच और रसूलपुर में दो खून जिस नौजवान लड़की ने किए हैं, वह हजरत के सामने पेश की गई है । इसने रसूलपुर में सुपरिन्टेन्डेन्ट-पुलिस और मेरे सामने जो इज़हार दिया था, वह गलत था, लेकिन कानपुर की कोतवाली में आने पर इसने अपनी रज़ामन्दी से

सही-सही बयान लिखवाया है और इस कागज पर अपने अंगूठे का निशान भी कर दिया है। इसके अलावे, इस खून की पूरी-पूरी तहकीकात की गई है और मुकम्मिल रिपोर्ट हुजूर की खिदमत में पेश होने के लिये तयार है।"

यों कहकर कोतवालसाहब चुप होगए और हाकिम (मजिष्ट्रेट) ने उनसे कहा,—"अच्छी बात है। आप सिलसिलेवार इस खून की बात बयान कर जाइए।"

यह सुनकर कोतवाल साहब ने अपनी मुट्ठी में दबे हुए बादामी कागजों को खोला और उन्हें ठीक तरह से हाथ में लेकर पढ़ना प्रारम्भ किया,—

"नौ बजने के करीब कोतवाली में दौलतपुर के तीन हरवाहे आए और वे मेरे रू-ब-रू पेश किए गए। मैं उस वक्त कोतवाली में ही मौजूद था, इसलिये मैंने उन तीनो हरवाहों को फौरन अपने सामने बुलाकर उन सभों का बयान लिया और उस कागज पर उन तीनो के अंगूठे का निशान करा लिया। यह * * * की बात है।

"मेरे आगे आकर और मेरा हुक्म पाकर वे तीनो करीने से बैठ गए और बाद इसके, उन तीनों में से "फलगू" नाम के हरवाहे ने यों अपना बयान लिखवाया,—

"मेरा नाम "फलगू" है और मेरे इन दोनो साथियों में से जो मेरी दाहिनी ओर बैठा है, उसका नाम "ढोंढ़ा" है और बाईं ओर-वाले का नाम "घोंघा"। हम-तीनो जात के 'कोइरी' हैं और 'दौलतपुर' नाम के गांव में रहते हैं। कई बरस से—शायद पांच, या छः-सात साल से हमलोग उसी गांव के एक ब्राह्मण 'विश्वनाथतिवारी' के यहां नौकरी करते और उनका खेत जोतते थे। हम-सब चार हरवाहे थे, जिनमें से एक (चौथा) 'कालू' नाम का कुरमी था, जो कल कतल किया गया। खैर, हम-सब उन्हीं

तिवारीजी के यहां नौकरी करते थे और बड़े आराम से अपना दिन बिताते थे। इधर पन्द्रह दिन से ऊपर हुआ होगा कि उन्हीं तिवारीजी की स्त्री प्लेग से मर गई ! उनका क्रिया-कर्म करके तिवारीजी भी मांदे पड़े और कल की रात छुच कर गए। आज-कल मेरे गांव में बड़े ज़ोर-शोर से प्लेग फैला हुआ है और गांव के लोग बराबर घर-द्वार छोड़-छोड़ कर इधर-उधर भागे जा रहे हैं। इसलिए जब तिवारीजी की मिट्टी उठाने गांव के कोई लोग न आए, तो हम्हीं चारों हरवाहे उन्हें उठाकर गङ्गा-किनारे ले गए और उन्हें जल में बहा आए। जब हमलोग मुर्दे को गङ्गा में बहाकर लौटना चाहते थे, तब उन्हीं तिवारीजी की नौजवान और क्वारी लड़की "दुलारी" मिली। पर जब हमलोगों की ज़बानी उसने यह सुना कि, 'उसके बाप यों हीं—बिना जलाए ही, गङ्गा में बहा दिए गए हैं;' तब वह बड़े ज़ोर से चीख उठी और चक्कर खाकर वहीं गिर पड़ी। यह देखकर हमलोग उसे उसके घर उठा लाए और एक चारपाई पर लिटा कर आपस में यह सलाह करने लगे कि, 'अब क्या करना चाहिए ?' आखिर, कालू की सलाह से हम-तीनों तो अपने-अपने घर चले गए और कालू उस लड़की (दुलारी) की देख-भाल और टहल-चाकरी करने के लिये वहीं रह गया। अपने दयावान मालिक के मरने का हमलोगों को बड़ा दुःख हुआ था, इसलिये सारी रात हमसभों को नींद न आई और बड़े तड़के हमलोग अपने मालिक के मकान पर पहुंचे। मालिक के मकान पर हमलोग पहुंचे तो सही, पर वहां जाकर जो कुछ हमलोगों ने देखा, उससे हमलोगों के सारे होशहवास गायब होगए और हमलोग हुजूर के पास दौड़े हुए चले आरहे हैं !"

यहां लों पढ़कर कोतवालसाहब फिर यों कहने लगे,—"बस, इतना कहकर जब 'फलगू' चुप होगया, तब मैंने उससे यों कहा,—"अच्छा, अब इसके आगे का हाल झट-पट कह जाओ।"

यह सुन कर फलगू कहने लगा,—"हुजूर, मालिक के मकान पर आकर हमलोगों ने मकान का सदर दरवाजा खुला पाया! यह देख कर हमलोगों ने " काल्टू-काल्टू " और "दुलारी-दुलारी " कह कर कई आवाजें दीं, पर जब उन दोनोंमें से कोई भी न बोला,तब हमलोग बड़ा ताज्जुब करते हुए मकान के अन्दर घुसे। भीतर आकर हमलोगों ने क्या देखा कि, 'घर की सब कोठरियों के सारे दरवाजे खुले हुए हैं और मकान की सारी चीजें गायब हैं !' यह देख कर हमलोग बड़े चकपकाए कि, 'क्या इस घर में रात को डांका पड़ा, जो सब चीज-बस्त नदारत हैं !' खैर, यों हीं तीन-चार कोठरियों को देख कर हमलोग एक और कोठरी में घुसे और वहांकी लीला देख कर एक दम घबरा गए! तो उस कोठरी में हमलोगों ने क्या देखा? यही कि 'उन्हीं तिवारीजी का परोसी हिरवा नाऊ धरती में मरा हुआ पड़ा है !' यह अजीब तमाशा देख कर हमलोगों को काठ मार गया और देर तक हमलोग उसी कोठरी में खड़े-खड़े हिरवा के मुर्दे की ओर देखते रहे। इसके बाद हमलोग उस कोठरी से बाहर निकल कर रसोई-घर में पहुंचे और वहां जो कुछ दिखलाई दिया, उससे हमसभों की मानो जान निकल गई! देर तक हम-तीनों, एक दूसरे को थाम्हें हुए उस बड़ी कोठरी की लीला देखते रहे। इसके बाद फिर आप ही आप हमलोग अपने आपे में आए और फिर सारा घर देख-भाल कर हुजूर की खिदमत में आ दाखिल हुए। तो, रसोई घर में हमलोगों ने क्या देखा कि, 'हमारे गांव के रहनेवाले 'धामा' और 'परसा' के तो सिर धड़ से अलग होकर एक ओर लुढ़क रहे हैं और 'नव्वू' के कलेजे में एक तलवार घुसेड़ी हुई है! फकत इतना ही नहीं,बरन एक चौथा आदमी भी, जिसका नाम 'काल्टू' था और जो तिवारीजी के हम-चार हरवाहों में से एक था, एक ओर मरा हुआ पड़ा है! उस (काल्टू) के कन्धे में तलवार का बड़ा गहरा घाव होरहा है !' बस,गरीबपरवर! यह सब

अजीब तमाशा देख कर हमलोगों की तो अकल कूच कर गई! फिर तो देर तक हमलोग सारे घर की देख-भाल करते रहे, पर बस घर में एक बुहारी भी बची हुई नहीं दिखलाई दी! यह सब था, पर तिवारीजी की उस नौजवान और कुंआरी लड़की 'दुलारी' का कहीं पता न था! यह सब देख-सुन कर हमलोग उस मकान से बाहर हुए और गोशाला में दुलारी को खोजने लगे, पर वह कहीं भी न मिली। हां, गोशाला की देख-भाल करने पर यह हमलोगों को मालूम होगया कि, 'भूसा ढोने का एक छकड़ा और सारे गाय बैल भी गायब हैं!!!' बस, हुजूर! यह सब लीला देख-सुन कर तो हमलोग यही समझते हैं कि, 'शायद रात को डाकू आए होंगे!' पर जब दुलारी की चिल्लाहट सुन कर उसकी मदद के लिये कालू, धाना, परसा वगैरह उस मकान में गए होंगे तो डाकुओं ने उन सभों को मार डाला होगा और घर के सब सामानों के साथ वे लोग दुलारी को भी पकड़ लेगए होंगे। और साथ ही इसके, चीज-असबाब ले जाने के लिये बैलों को जोत कर उस छकड़े को भी अपने साथ लेते गए होंगे!' मगर एक बात उस कोठरी में, जिसमें कि धाना इत्यादि कटे पड़े हैं, बड़ी विचित्र देखने में आई! वह यह कि, 'कालू के मुर्दे के पास एक पानी-भरी मिट्टी की गगरी रक्खी हुई है! उस गगरी के देखने से हुजूर यह बात भली भांति समझलेंगे कि वहां पर वह गगरी लड़ाई-झगड़े के होने के पहिले कभी भी न रही होगी, बलिक बाद को पहुंचाई गई होगी।' तो उस गगरी को उस घर में कौन लेगया, यह बात हमलोग नहीं जानते। फकत इतनाही नहीं, बरन उस कोठरी में, और उस कोठरी के बाहर भी कई एक कदम तक खून से भरे हुए दुलारी के पैर के निशान मौजूद हैं! इससे यह मालूम होता है कि धाना वगैरह के मरने के वक्त भी दुलारी उस घर में मौजूद थी! हुजूर दुलारी के पैर के निशान हमलोग अच्छी तरह पहचानते हैं। लेकिन दुलारी के पैर

के निशान वहां कैसे बने ? क्या यह उन सभों के मरने के बाद भी उस घर में मौजूद थी ! एक बात हुजूर से और अरज कर देनी है,—वह यह कि अब उस कोठरी और उसके बाहर हमलोगों के भी पैर के दाग पड़ गए हैं। क्योंकि हमलोग धड़धड़ाते हुए उस कोठरी में घुस गए थे, इसलिये वहां पर फैले हुए खून में हमलोगों के पैर डूब गए थे। सो, उस कोठरी में और उसके बाहर भी हमलोगों के पैर के निशान अब पड़ गए हैं ! पीछे हमलोगों ने बाहर आंगन में आकर अपने अपने पैर धो डाले हैं। बस, गरीबपरवर ! यही तो वहांका हाल है, जिसकी रिपोर्ट लिखाने हमलोग हुजूर की खिदमत में हाजिर हुए हैं : यहां पर इतना और भी अर्ज कर देना मुनासिब होगा कि उस वार्दात की रिपोर्ट लिखाने जब हमलोग वहांसे चलने लगे थे, तब पहिले हिरवा की मां 'हुलसिया' के घर गए थे। पर वहां जाकर हुलसिया को हमलोगों ने बुखार में बेसुध पाया और हिरवा की जोरू को घर पर मौजूद न पाया। बस, बन्देनेवाज ! हमलोगों का यही बयान है, जो ठीक ठीक लिखाया गया है। इसके अलावे, इस खून या डकैती के मामले में हमलोग और कुछ भी नहीं जानते।"

यहां लों पढ़ कर कोतवालसाहब ने हाकिम से यों कहा,—"बन्देनेवाज ! उन तीनों हरवाहों के दिये हुए इस इजहार को कलमबन्द कर और इस पर उन तीनों के अंगूठे की छाप लेकर उन तीनों को तो बेड़ी हथकड़ी भर दी गई और पुलिस के अफसर सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब को 'टेलीफोन' से इस वार्दात की खबर दीगई। इसके जवाब में उन्होंने यों कहा कि, 'दौलतपुर चलने का काफ़ी इन्तजाम करो, मैं भी अभी आता हूं।'

"गरज, आध घन्टे के अन्दर सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब आ गए और उनके हुक्म बमूजिब आठ कांस्टेबिलों के पहरे में फलगू, ठोंढ़ा और घोंघा को साथ लेकर हमलोग गाड़ियों पर सवार

होकर दौलतपुर की तरफ़ रवाने हुए। रास्ते में मैंने साहब बहादुर को फलगू के दिए हुए इजहार को सुना दिया था। उसे सुन और फलगू वगैरह से उसकी तसदीक करा कर जनाब सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब बहादुर ने उस कागज पर अपना दस्तखत कर दिया है और मेरी भी उस पर सही हो रही है।"

"खैर, हमलोग दोपहर होते-होते उस गांव में पहुंच गए और विश्वनाथतिवारी के मकान पर जाकर अच्छी तरह उस घर की देख-भाल की गई। वाकई, हुजूर! उस घर की उस वक्त वैसी ही हालत थी, जैसी कि फलगू ने अपने बयान में बतलाई थी। फिल-हकीकत, घर की हालत देखने से यही यकीन होता था कि, 'रात को जरूर इस मकान में डांका पड़ा है!' मगर खैर, वे पांचों मुर्दे तो पुलिस की निगरानी में कारोनर की जांच के लिये कानपुर रवाने किए गए और हमलोग उस खून की तहकीकात करने लगे। गो, उस गांव के बहुतेरे आदमी प्लेग के डर से इधर-उधर भाग गए थे, पर जो मौजूद थे, उनसे पूछने पर किसीने भी उस वार्दात के बारे में कुछ भी नहीं बतलाया। हिरवा की मां को भी हमलोग देखने गए थे, पर फलगू के कहने-बमूजिब वह बुखार में बदहवास पड़ी थी और हिरवा की जोरू का कहीं पता न था। यह सब देख सुन कर उस वक्त हमलोगों ने यही समझा था कि, 'डांकूलोग दुलारी के साथ ही साथ हिरवा की जोरू को भी पकड़ ले गए हैं!' लेकिन थोड़ी ही देर में वह खयाल गलत साबित होगया और एक नया ही गुल खिल उठा!!!"

बस, इतना कहते-कहते कोतवाल साहब जरा रुके थे कि चट हाकिम ने उनसे पूछा,—"एं! नया गुल क्या खिल उठा?"

यह सुन, कोतवाल साहब फिर कहने लगे,—"दोपहर ढलने पर, एक बजे के करीब, 'रसूलपुर' के थानेदार अबदुल्लाखां दो चौकीदारों के साथ एक इक्के पर सवार वहां आ पहुंचे। पस, जब

उनसे वहां आने का सबब पूछा गया, तब उन्होंने यों कहा कि,—
"आज एक पहर दिन चढ़ते चढ़ते एक नौजवान और निहायत हसीन लड़की रसूलपुर के थाने पर पहुंची और उसने मुझसे यों कहा कि, "मेरे घर में रात को पांच खून होगए हैं, उनकी रिपोर्ट आप लिख लीजिए।" यों कहकर उस औरत ने एक अजीबोगरीब दास्तान कह सुनाई! बस, उस औरत की यह अनोखी बात सुनकर मैंने उसे तो वहीं एक कोठरी में बंद करके उसके पहरे का काफी इन्तजाम कर दिया और हींगन चौकीदार के साथ यहांके लिये फौरन कूच किया। वह नौजवान लड़की या औरत अपना नाम दुलारी बतलाती है।" बस, अबदुल्लाखां की जबानी यह हाल सुनकर हमलोगों ने गौर के साथ फिर उस घर को, जिसमें कि चार लाशें पड़ी हुई थीं, अच्छी तरह देखा, तो क्या देखा कि उस घर से लेकर बाहर आंगन तक छोटे छोटे पञ्जे (पैर) के निशान पड़े हुए हैं! उन निशानों को देखकर अबदुल्ला ने यों कहा कि, 'गालिबन यह उसी लड़की दुलारी के पैर के निशान होंगे; क्योंकि उसके पैर ऐसे ही छोटे और नाजुक हैं।' इस बात को साहब बहादुर ने मान लिया और हमलोगों ने यही गुमान किया कि, 'उस बहादुर लड़की ने एक कोठरी में एक शख्स को गला घोंट कर मार डाला। फिर वह दूसरी कोठरी में चार-चार आदमियों को काटकर खुद रिपोर्ट करने रसूलपुर के थाने पर पहुंची है!!!" मगर, खैर। फिर तो यह बात ठीक समझी गई कि वह छोटे पञ्जे के निशान दुलारी के पैर के ही हैं; क्योंकि फलगू ने भी अपने बयान में ऐसा ही कहा है। बस, इसके बाद साहब बहादुर ने अबदुल्ला को यह हुक्म देकर फौरन रुखसत किया कि, "कल उस औरत को कानपुर की कोतवाली में हाजिर करो।" और उनके जाने पर मुझसे यों कहा कि,—" फलगू-वगैरह इन तीनों को अभी कानपुर की कोतवाली में लेजाकर रखना चाहिए।

अच्छा, अब यहांसे चलना चाहिए, क्योंकि अब यहां पर नाहक ठहर कर देर करने की कोई जरूरत नहीं है। हां, इस मकान की निगरानी के लिये एक पुलिसमैन यहां पर जरूर छोड़ देना चाहिए।" बस, साहब बहादुर का हुकुम सुनकर एक कांस्टेबिल को उस मकान की निगरानी के लिये छोड़ दिया गया और उन तीनों कैदियों को अपने साथ लेकर शाम होते-होते हमलोग कानपुर लौट आए। लौट तो आए, पर पिछली रात को एक दूसरी खौफनाक खबर मिली!"

यह सुनकर हाकिम ने पूछा,—"वह कौन सी खबर थी?"

इस पर कोतवाल साहब कहने लगे,—"जी, अर्ज करता हूं। मेरी यह हमेशे की आदत है कि मैं रात को चाहे कभी सोऊं, पर पिछली रात को उठ बैठता हूँ। बस, मैं तीन बजे रात को उठ और फारिग-वारिग होकर कुछ लिखने-पढ़ने बैठा ही था कि इतने ही में रसूलपुर गांव के थाने के दो चौकीदार घबराए हुए कोतवाली में आए। उनके आने की खबर मुझे तुरत दी गई और फौरन वे दोनों मेरे रू-ब-रू पहुंचाए गए। जब वे दोनों मेरे सामने आकर करीने से बैठ गए, तब मैंने उनसे पूछा,—"तुम दोनों 'रसूलपुर' गांव के चौकीदार हो?" इस पर उन दोनों ने—"हां"—कहा। तब फिर मैंने पूछा,—"तुम दोनों का नाम क्या है और किस गरज से यहां आए हो?" यह सुनकर उन दोनों में से एक ने कहा,—"बन्देनेवाज, मेरा नाम रामदयाल है और मेरे इस जोड़ीदार का नाम कादिरबख्श। मेरे उस गांव (रसूलपुर) के थानेदार अबदुल्ला खां और चौकीदार हींगन खां का आज रात को खून होगया है! यह जानते ही हम-दोनों चौकीदार अपने गांव से रवाने हुए और हुजूर की खिदमत में उस मामले की रिपोर्ट लिखाने आए हैं।"

बस, यहां तक पढ़कर कोतवाल साहब जरा ठहरे ही थे कि झट मजिष्ट्रर साहब ने उनसे यों कहा,—"उन दोनों चौकीदारों

ने जो रिपोर्ट लिखाई हो, उसे पढ़ो।"

यह सुनकर कोतवाल साहब ने—"बहुत खूब"—कहकर रामदयाल की लिखाई हुई रिपोर्ट को यों पढ़ना प्रारम्भ किया,—"हुजूर, मेरा नाम रामदयाल और मेरे जोड़ीदार का नाम कादिर-बख्श है। हम-दोनो रसूलपुर गावं के थाने के चौकीदार हैं। इसी थाने पर, अभी कई घण्टे हुए, आज ही की रात को दो खून होगए हैं। इन दोनोंमें से एक तो खुद वहांके थानेदार अबदुल्लाखां थे और दूसरे हींगनखां चौकीदार। उन दोनोंके खून होने की खबर हम-लोगों को दुलारी नाम की एक नौजवान लड़की ने दी। इस वार्दात का खुलासा हाल यह है कि, 'कल दिन के दस बजने के समय एक नौजवान लड़की एक बैलगाड़ी पर चढ़ी हुई रसूलपुर-गावं के थाने पर आई। उस समय हम-सब, अर्थात् हींगन चौकीदार को छोड़कर बाकी के हम-सब तो अपनी कोठरी में थे, सिर्फ हींगन चौकीदार थानेदार के पास था। सो, जब वह लड़की थाने पर पहुंची, तब पहिले उसकी बात-चीत हींगन के साथ हुई थी। इसके बाद वह थानेदार के सामने गई थी, ऐसा ही हमलोगों ने हींगन चौकीदार की जबानी सुना था। पर उस लड़की या औरत की हींगन या थानेदार अबदुल्ला के साथ क्या-क्या बात-चीत हुई थी, इसे हमलोग नहीं जान सके; क्योंकि उस वक्त हमलोग वहां पर मौजूद न थे। हां, कुछ देर के बाद जब थानेदार ने उस लड़की को कैदवाली कोठरी में बंद कर दिया, तब हमलोगों को बुलाकर यह हुक्म दिया कि, 'यह लड़की दौलतपुर नाम के गावं से आई है और अपने घर में पांच खून होजाने की बात कहती है। इसलिये मैं तो अभी हींगन चौकीदार के साथ इसके गावं पर उन खूनों की तहकीकात करने के लिये जाता हूं और तुमसभों को यह हुकुम दिए जाता हूं कि पारी-पारी से दो-दो चौकीदार इस खूनी औरत की खूब मुस्तैदी के साथ खबरदारी करना।' बस, इतना

कहकर थानेदार अबदुल्लाखां तो हींगन चौकीदार के साथ उसी औरत की बैलगाड़ी पर सवार होकर दौलतपुर गावं की ओर चले गए और हम दो चौकीदार, यानी मैं (रामदयालमिश्र) और खियानतहुसेन चौकीदार, उस दुलारी नाम की औरत की चौकसी करने लगे। फिर जब रात को एक इक्के पर चढ़े हुए हींगन चौकीदार के साथ अबदुल्लाखां लौट आए और खाना-वाना खाकर शराब पीने लगे, तब उन्होंने हींगन को छोड़कर बाकी के हम-सब चौकीदारों को अपने सामने बुलाकर यह हुकुम दिया कि, 'अब तुम-सब अपनी कोठरी में जाकर आराम करो । क्योंकि अब मैं उस कैदी औरत का इजहार लूंगा और उससे उन खूनों को कबूल कराऊंगा। इसमें मुमुकिन है कि यह औरत खूब शोर-गुल मचावे ! मगर तुमलोग उसकी चीख या चिल्लाहट सुनकर यहां हर्गिज मत आना और अपनी कोठरी में ही रहना। यहां मेरे पास सिर्फ हींगन रहेगा।' बस, थानेदारसाहब का ऐसा हुकुम सुनकर हम-सब चौकीदार अपनी कोठरी में चले गए और आग सुलगाकर बैठे हुए आपस में तरह-तरह की बात-चीत करने लगे। फिर बड़ी देर के बाद जब उसी औरत ने हमलोगों के पास आकर अबदुल्ला और हींगन के खून होने की बात कही, तब हमलोगों ने मारे घबराहट के उस औरत को तो अपनी ही कोठरी में बन्द कर दिया और दौड़े हुए जाकर क्या देखा कि, 'थानेदार-वाली कोठरी में तखत के ऊपर अबदुल्ला का धड़ पड़ा हुआ है, सिर उसका कोठरी की धरती में लुढ़क रहा है, हींगन भी उसी तखत पर मरा हुआ पड़ा है और उसके कलेजे में तलवार भोंकी हुई है ! ! !' यह अजीब तमाशा देख कर हमलोग बड़े घबरा गए ! पर फिर आपस में सलाह करके चार चौकीदारों को तो उस औरत की निगरानी के वास्ते वहीं छोड़ दिया और मैं (रामदयाल) अपने जोड़ीदार कादिरबख्श के साथ उस वारदात की रिपोर्ट करने यहां हुजूर की खिदमत में आकर हाजिर

हुआ। उस औरत (दुलारी) ने तो हम-सभों से यह बात कही है कि, 'मेरे खातिर अबदुल्ला और हींगन आपस में कट मरे हैं!' पर अब हमलोग यह नहीं कह सकते कि असल बात क्या है! यानी, वे दोनो आपस में लड़-झगड़ कर खुद कट मरे हैं, या अपनी इज्जत-आबरू बचाने की नीयत से उस औरत ने ही किसी ढब से उन दोनों को मार डाला है! यह बात तो फकत परमेश्वर ही जान सकता है। हुजूर! रसूलपुर थाने पर हम-सब आठ चौकीदार थे, जिनमें से 'करीमन' नाम का एक चौकीदार आज पांच दिन हुए, पंद्रह दिन की छुट्टी लेकर अपने घर गया है और हींगन मारा ही गया है। बस, अब हमलोग सिर्फ छः चौकीदार वहां पर हैं। बस, बन्देनेवाज, उन दोनों खूनो के बारे में जो कुछ हमलोग जानते थे, उसकी रिपोर्ट हुजूर की खिदमत में लिखवादी गई।"

बस, यहां तक पढ़कर कोतवाल साहब मजिस्टर साहब से फिर यों कहने लगे,—"बस, हुजूर! उन दोनों चौकीदारों के उस बयान के लिखजाने पर उस कागज पर उन दोनों के अंगूठे की छाप लेली गई और इस नई वार्दात की खबर जनाब सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब बहादुर को फौरन टेलीफोन के जरिये दी गई। उस खबर के पाते ही वे फौरन कोतवाली में आए और रामदयाल और कादिर बख्श के उस बयान की तसदीक कर उस पर खुद दस्तखत करके मुझसे भी उस पर सही करा ली। फिर हमलोग गाड़ियों पर सवार होकर रसूलपुर गांव पहुंचे और रामदयाल की बतलाई हुई कोठरी में हमलोगों ने उस औरत को बन्द पाया। वह उस कोठरी का दरवाजा अन्दर से बन्द करके जंगलेदार खिड़की के आगे बैठी हुई थी, पर साहब बहादुर के कहने से फौरन वह उठी और कुण्डी खोलकर उस कोठरी से बाहर हुई। तब साहब बहादुर के हुकुम से मैंने उसके हाथों में हथकड़ी भर दी। इसके बाद साहब बहादुर के हुकुम से उसने अपना जो बयान

वहां पर लिखवाया था, वह मेरे पास मौजूद है। इस कागज पर उस औरत के अंगूठे के निशान हैं और साहब बहादुर व मेरी भी सही है! सिर्फ इतना ही नहीं, बल्कि उस कागज पर वहांके मौजूदा छओं चौकीदारों के अंगूठे के भी निशान साहब बहादुर ने करा लिए हैं। उन छओं मौजूदा चौकीदारों के नाम ये हैं,—
(१) रामदयाल मिसिर, (२) दियानतहुसेन, (३) कादिरबख्श, (४) मजनदुबे, (५) गजाधर पांड़े, (६) मातादीन तिवारी। इन छओं के अलावे वह सातवां चौकीदार करीमन छुट्टी लेकर अपने घर गया हुआ है। आठवां चौकीदार हींगन मारा ही गया है। बस, इस तरह उस गांव पर कुल आठ चौकीदार थे, जिनमें से इस वक्त वहां पर छः चौकीदार मौजूद हैं और अबदुल्ला थानेदार की जगह पर कानपुर की कोतवाली से मदारीलाल नाम का एक हेड जमादार, जो पढ़ा लिखा हुआ भी हैं, तब तक के लिये वहां भेज दिया गया है, जब तक कि कोई दूसरा इन्तजाम न होवे।"

बस, यहां तक पढ़कर जब कोतवाल साहब चुप हुए, तब मजिस्टर साहब ने उनसे कहा,—"अच्छा, अब इस औरत यानी दुलारी के उस इज़हार को पढ़िए, जो इसने रसूलपुर के थाने पर दिया था।"

यह सुनकर कोतवाल साहब मेरे दिए हुए उस बयान का बयान करने लगे और हाकिम ध्यान से उसे सुनने लगे।

यों कहकर मैंने भाई दयालसिंहजी की ओर देखकर यों कहा,—"क्यों, महोदय! क्या रसूलपुर गांव में दिए हुए अपने इजहार को मैं फिर दुबारे सुना जाऊं!"

यह सुनकर भाई दयालसिंहजी के बदले वे साहब बहादुर, जो भाई दयालसिंह और बारिस्टर साहब के बीच में बैठे हुए मेरा इजहार लिख रहे थे, मेरी ओर देखकर यों बोले,—"नेईं, डुलारी! उस इजहार का बाट टुम अपाना रसूलपुर का हाल कहने का

थकट बोल गया है। इस वाशटे अब डुबारा उस बाट का कहने का कोई जरूरट नई है।"

इस पर मैंने फिर यों पूछा,—" खैर, तो मेरे रसूलपुर गांव में दिए हुए इजहार के पढ़ने के बाद कोतवाल साहब ने वहांके चौकीदार रामदयाल वगैरह के इजहार को पढ़कर हाकिम को सुनाया था। उस इजहार की बात भी मैं आपके सामने अपनी कहानी के सिल सिले में सुना गई हूँ, इसलिये अब उसके लिये क्या हुकुम होता है ? " (१)

साहब बहादुर ने इस पर यों कहा,—"ठीक बाट है, अब उश इजहार के शुनाने का कोई काम नईं है। इश वाशटे अब टुम अपाना वह इजहार सुनाओ, जो कानपुर की कोटवाली में कोटवाल साहब का आगे दिया ठा।"

यह सुनकर मैंने कहा,—" साहब, मैंने कोतवाल साहब के आगे, कोतवाली में आने पर अपना कोई इजहार नहीं लिखाया था। बल्कि उन्होंने जो एक कोरे कागज पर जबरदस्ती मेरे अगूठे का निशान ले लिया था, उस पर अपने मन-मानता मेरा बयान खुद लिख लिया था। यह बात मैं अभी आपके आगे कह गई हूँ।"

साहब ने कहा,—" हां, ठीक बाट है, अच्छा, अब टुम वही बयान बोलो।"

इस पर—"बहुत अच्छा"—कहकर मैंने यों कहा,—"महोदय, इस प्रकार जब कोतवाल साहब मेरे रसूलपुर गांव में दिए हुए इजहार और उसके बाद रामदयाल इत्यादि चौकीदारों के दिए हुए बयान को पढ़ चुके, तब उन्होंने हाकिम के कहने से वह कागज पढ़ना प्रारम्भ किया, जिस पर मेरे अंगूठे की छाप बरजोरी लेली गई थी और जिसमें कोतवाल साहब ने अपने मन-मानता मजमून

(१) सोलहवां परिच्छेद देखो।

खुद लिख लिया था। उस इजहार की नकल यह है,—

हजरत कोतवाल साहब उस कागज को अपनी आंख के आगे करके यों पढ़ने लगे,—

"मेरा नाम दुलारी है। मेरे बाप का नाम विश्वनाथतिवारी था। मेरा मकान 'दौलतपुर, नाम के गांव में है। मेरी उम्र इस समय पंद्रह या सोलह बरस के लगभग होगी। मैं अभी तक कारी हूं। आज कई दिन का अरसा हुआ कि मेरे बाप पलेग से मर गए। इसके कुछ ही दिन पहिले मेरी मां मर चुकी थीं। सो, मेरे बाप जब मरे, तब उस गांव का कोई भी उन्हें उठाने नहीं आया था, क्योंकि सारे गांव में पलेग फूट निकला था। इसलिये मेरे बाप के मरने पर उनके उठाने के लिये जब गांववालों में से कोई भी न आया, तब मेरे यहां जो चार हरवाहे नौकर थे, वे ही मेरे बाप को उठा कर ले गए। यह देख कर मैं भी उन सभों के पीछे-पीछे दौड़ी गई, पर जब मैं गंगा किनारे पहुंची, तो मैंने क्या देखा कि वे चारों गांव की ओर लौट रहे हैं! यह देख कर जब मैंने उन सभों से यों पूछा कि, 'तुमलोगों ने मेरे पिता का क्या किया?' तो इस पर उन सभों ने यों जवाब दिया कि, 'उन्हें हमलोगों ने गंगा में बहा दिया।' यह सुनते ही मैं उसी जगह चक्कर खाकर गिर गई, पर जब मुझे होश हुआ, तो मैंने अपने तई अपने घर में एक चारपाई पर पड़े हुए पाया! यह देख कर मैं उठ बैठी। इतने ही में मेरी कोठरी में मेरा परोसी हिरवा नाऊ आया और वह मुझसे बुरी-बुरी बातें कह कर वाहियात छेड़छाड़ करने लगा। उसकी ऐसी ढिठाई देख कर मैं जल-भुन कर खाक होगई और उसे अपने यहांसे चलेजाने के लिये बार-बार कहने लगी। लेकिन इतने पर भी जब वह न माना और ज्यादे हाथ-पैर बढ़ाने लगा; तब तो मैं मारे गुस्से के आपे से बाहर होगई और उसे धरती में पटक कर उसकी छाती पर चढ़ बैठी। इसके बाद फिर तो मैंने ऐसे

ज़ोर से उसका गला मींचा कि वह आखिर मर ही गया! जब मैंने इस बात का यकीन कर लिया कि,'अब यह कम्बख्त मर गया होगा;' तब मैं उसके गले को छोड़ कर उसकी छाती पर से हटी। फिर दीया लेकर जब मैंने अच्छी तरह से उसे देखा तो सचमुच मुरदा पाया! यह देख और दीया आले पर रख कर मैं उस कोठरी से बाहर हुई और एक दूसरी कोठरी में जाकर टहलने लगी। उस समय मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो मेरे घर में कई आदमी घुसे हुए आपस में कुछ कानाफूसी कर रहे हैं! यह जान कर मैं जरा डर गई, पर फिर तुरत ही मैंने अपना जी कड़ा कर और अपने हरवाहों का नाम लेकर उन्हें पुकारना शुरू किया। मेरे चार हरवाहे थे और उनका नाम यह था,—(१) फलगू, (२) ढोंढ़ा, (३) घोंघा, (४) काल्टू। बस, इन्हीं चारों का नाम लेकर बार-बार मैं पुकारने लगी। उस समय तो मेरी पुकार पर कोई न बोला, पर थोड़ी ही देर में चार आदमियों ने मेरी कोठरी में आकर मुझे घेर लिया और मुझसे बहुत ही गन्दी-गन्दी बातें कहनी शुरू कीं। यह रंग-ढंग देख कर पहिले तो मैं बहुत ही डर गई, पर फिर कुछ सोच-साच कर मैंने अपने जी को पोढ़ा किया और उन सभोंसे यों कहा,—'अच्छा, तुम सभों की बातें मुझे मंजूर हैं। इसलिये तुम-सभों में से तीन आदमी तो यहीं रहो और एक मेरे साथ दूसरी कोठरी में चलो।' यह सुन कर उन चारों पापियों में से तीन तो उसी कोठरी में ठहरे रहे और चौथा, जिसका नाम धाना था, मेरे साथ हुआ। उसे मैं रसोईघर में ले गई। वहां जाकर मैंने अपने बाप की तलवार, जो मेरे पास थी, हाथ में लेकर इस जोर से उसकी गर्दन पर मारी कि वह बिना "चूं" किए ही 'रुण्ड-मुण्ड' होकर धरती में गिर गया। यह हाल देख कर एक बेर तो मैं कांप उठी, पर फिर धीरे धीरे अपने जी की धड़कन दूर कर और कुछ देर ठहर कर मैंने वहीं से परसा को आवाज दी। मेरी पुकार सुनतेही

वह तुरत उस कोठरी के दरवाजे पर आया और कोठरी में अंधेरा देखकर बोला,—' दीया बुझा दिया क्या ? ' इस पर मैंने " हां " कहा। इस पर फिर वह बोला,—' धानू कहां गया ? ' इसका मैंने यों जवाब दिया कि, ' वह बाहर गया है। बस, अब तुम जल्द भीतर आओ और अपना काम करके बाहर चले जाओ। ' मेरी ऐसी बात सुनकर वह उस कोठरी के अन्दर ज्योंहीं घुसा, त्योंही मैंने उसे भी एक ही हाथ में दो टूक करके जमीन में गिरा दिया। बस, दो-दो आदमियों को काटकर फिर तो मैं पूरी-पूरी निडर होगई और छिन भर ठहर कर फिर मैंने कल्लू को आवाज दी। मेरी आवाज सुनकर वह उठ दौड़ा और इस तेजी के साथ मेरी कोठरी में घुसा कि उसके कलेजे में तलवार घुसेड़ते मुझे जरा भी देर न लगी। देर तो न लगी, पर कलेजे में तलवार घुसेड़ कर मैंने अच्छा काम नहीं किया था। इस बात का मतलब यह है कि तलवार भोंकी जाने पर वह इतने जोर से चीख मार उठा कि उसे सुनकर काल्लू तुरत मेरी कोठरी की ओर यों चिल्लाता हुआ दौड़ा कि, " क्या हुआ, कैसा हुआ !!! " पर कोठरी के अन्दर घुसते घुसते उस पर भी मैंने तलवार का वार किया और वह घायल होकर—" दगा-दगा "—कहता हुआ धरती में गिरकर छटपटाने और बार बार पानी मांगने लगा। यह सुनकर मैंने उस कोठरी में दीया बालकर उजाला किया और बाहर से पानी की कलसी लाकर काल्लू को कुछ थोड़ा सा जल पिलाया। थोड़ी ही देर में जब वह मर गया, तब मैं अपने घर से बाहर हुई। बाहर निकलते ही अपने घर के द्वार पर मैंने अपनी बैलगाड़ी जुती हुई तयार देखी, जिसमें मेरे ही दो बैल जुत रहे थे। यह देखकर मैं उस पर सवार हुई और रसूलपुर गांव की ओर चली। मेरे गांव का थाना जल गया था, इसलिये मैं रसूलपुर की ओर चली। मैं उस समय, चाहे जिधर, भाग सकती थी, पर यह सोचकर कहीं न भागकर

सोची थाने पर पहुंची कि, 'अगर भाग जाऊंगी, तो मैं ही इन खूनों के करनेवाली मानी जाऊंगी; पर जो मैं खुद इस वार्दात की रिपोर्ट लिखाऊंगी, तो शायद बेदाग बच जाऊंगी।' बस, यही सब सोच-सांच सोचकर मैं रसूलपुर गांव की ओर चली और पहर डेढ़ पहर दिन चढ़ते-चढ़ते रसूलपुर के थाने पर जा पहुंची। वहां जाकर मैंने वहांके थानेदार के आगे अपना उसी ढंग का बयान कहा, जिस ढब का कि वहां पर दूसरे दिन एक अंगरेज अफसर और कोतवाल के आगे लिखाया था। बस, मेरा बयान सुनकर— लिखकर नहीं, फकत सुनकर—उस थानेदार ने मुझे एक कोठरी में बन्द करके उसमें ताला लगा दिया और आप एक चौकीदार को साथ लेकर मेरे गांव की ओर मेरे घर में हुए खूनों की तहकीकात करने मेरी ही बैलगाड़ी पर सवार होकर चला गया। उसके जाने पर जो चौकीदार मेरे पहरे पर मुकर्रर हुए थे, उनमें से किसीने न तो मुझे कुछ खिलाया-पिलाया ही था, और न किसी तरह की कोई बात चीत ही की थी। उनके बारे में उन का नाम लेकर अंगरेज अफसर के सामने जो कुछ मैंने अपने बयान में लिखवाया है, वह बिलकुल झूठ है। इसके बाद जब मैं कानपुर की कोतवाली में लाई गई, तो वहांके कोतवाल साहब बड़ी भलमन्सी से मेरे साथ पेश आए और बहुत ही आराम के साथ उन्होंने मुझे एक कोठरी में रक्खा। मुझे ब्राह्मन के हाथ का बनाया हुआ खाने को दिया और किसी तरह की भी तकलीफ न होने दी। उनकी ऐसी शराफत देखकर मैं बहुत ही खुश हुई और आप ही आप एक दिन मैंने इन सातों खूनों का सच्चा-सच्चा हाल उन्हें लिखवाकर उस कागज पर अपने अंगूठे की निशानी कर दी। मैं पढ़ी लिखी नहीं हूं, इसलिये अंगूठे का निशान करती हूं। और, तो पांच खूनों का हाल तो मैं ऊपर कह आई हूं, अब दो का हाल और कहकर अपने बयान को पूरा करूंगी। बात यह है कि जब रात को रसूलपुर का

थानेदार वहां लौटकर आया, तो उसने मुझे अपनी कोठरी में बुलाया। उस समय कोठरी में से बाहर निकालकर जो चौकीदार मुझे थानेदार के पास लेजा रहा था, उसका नाम 'हींगन' था। सो, उसे मैंने यह चकमा देकर सब्जबाग दिखलाया कि, 'अगर तुम थानेदार को मारकर मुझे यहांसे निकाल ले चलो तो मैं तुम्हारी बीबी बनूंगी।' बस, वह बेवकूफ मेरी ऐसी बात सुनते ही मेरे दम झांसे में आगया और मुझसे यों कहने लगा कि, 'अच्छा, दुलारी! तुम्हारी लासानी खूबसूरती की खातिर मैं अबदुल्ला को फौरन मार डालता हूं और तुम्हें यहांसे बेलाग बचाकर कहीं ले भगता हूं।' बस, यों कहकर वह मुझे अबदुल्ला की कोठरी में लेगया। मुझे देखते ही अबदुल्ला ने उसी तख्तपर बैठने का इशारा किया, जिसे समझकर मैं उसी तख्तपर एक किनारे करीने से बैठ गई। अबदुल्ला उस वक्त दम पर दम, प्याले पर प्याले खाली करता जा रहा था। सो, वहीं पर हींगन भी बैठ गया और थोड़ी ही देर में उसने भी दो-तीन बोतलें खाली कर डालीं। इसके बाद उस (हींगन) ने तलवार उठाकर इस जोर से अबदुल्ला की गर्दन पर मारी कि उसका सिर भुट्टे की तरह कटकर दूर जा गिरा और उसकी बेसिर की लाश उसी तख्त पर लुढ़क गई! यह तमाशा देखते ही मैंने हंसकर हींगन को मुबारकबाद दी और अपने हाथ से प्याले में शराब ढालकर उसे पिलाना शुरू किया। एक घण्टे में मैंने इतनी शराब उसे पिलाई कि वह मारे नशे के बेहोश होकर उसी तख्त पर लोट गया! तब मैंने उठकर एक दूसरी तलवार, जो वहीं पर एक कोने में रक्खी हुई थी, उठाकर और उसे म्यान से बाहर खैंचकर उस (हींगन) के कलेजे में घुसेड़ दी। बस, इस तरह जब वे दोनों मूजी खतम होगए, तब मैंने मन ही मन यों सोचा कि, 'अब मुझे क्या करना चाहिए?' आखिर, देर तक खूब अच्छी तरह अपना आगा पीछा सोचकर मैंने यही बात ठीक की कि,

'यहांसे भागना ठीक न होगा।' यों सोचकर मैं उस कोठरी से बाहर हुई और उस कोठरी के पास पहुंची, जिसमें रामदयाल वगैरह छओं चौकीदार बैठे हुए आग ताप रहे थे। मुझे अपनी कोठरी के दरवाजे पर देख और मेरी जबानी अबदुल्ला और हींगन के मारे जाने की बात सुनकर वे सब इस कदर घबरा उठे कि, बस झटपट मुझे उसी (अपनी) कोठरी में बन्द करके सब के सब दौड़ते हुए अबदुल्ला की कोठरी की ओर गए। इसके बाद उस रात को मुझे किसी चौकीदार ने न छेड़ा और मैं भी उस कोठरी की कुण्डी भीतर से बन्द करके वहीं पर पड़ी हुई एक चारपाई पर पड़कर सो गई। सुबह जब दियानतहुसेन नाम के चौकीदार ने मुझे जगाया, तब मेरी नींद खुली और मैं चारपाई पर से उठकर उसी कोठरी में की एक खिड़की के आगे एक मूढ़ा रखकर उसी पर बैठ गई। थोड़ी देर के बाद मैंने एक भरी हुई बन्दूक और एक तलवार लेकर अपने मूढ़े के अगल-बगल खड़ी कर ली थी। कुछ दिन निकलने पर जब एक अंगरेज अफसर ने मेरी कोठरी के आगे आकर मुझे कुण्डी खोलकर बाहर निकलने को कहा, तब मैं बाहर निकली और निकलते ही मेरे हाथों में कानपुर के कोतवाल साहब ने हथकड़ी भर दी। इसके बाद उन साहब बहादुर ने मेरा बयान लिया, जिसे कोतवाल साहब ने लिखा। वह बयान मैंने ठीक नहीं लिखवाया था, इसलिये कानपुर की कोतवाली में आने पर अपनी रजामन्दी से मैंने यह बयान कोतवाल साहब को सही सही लिखा दिया और इस पर अपने अंगूठे की छाप भी कर दी।"

यों कह कर सत्यव्रत कोतवाल साहब ने उस बादामी रंग के कागजों को पेशकार के हाथ में दे दिया और यों कहा कि,—"इन कागजों में इन खूनों की पूरी पूरी तहकीकात की कुल कार्रवाई दर्ज है, और यह खूनी औरत सात खून करने के जुर्म में हुजूर के रू-ब-रू पेश है।"

बीसवां परिच्छेद ।

जेल में !

" येन यत्रैव भोक्तव्यं सुखं वा दुःखमेव वा ।
स तत्र बध्वा रज्वेव बलाद्दैवेन नीयते ॥ "

(व्यासः)

हे परमेश्वर ! कोतवाल साहब की यह अद्भुत लीला देख कर मै तो भैचक सी रह गई ! पर तुरत ही मैंने भगवती का स्मरण करके मजिष्टर साहब की ओर देख कर यों कहा,—" हुजूर, मुझ अनाथ की भी एक अरज सुन— — — — "

अररररररर ! ! ! इतना सुनते ही हाकिम ने मुझे बड़े ज़ोर से डांट बताई और यों कहा,—" तुम अभी चुप रहो। जब तुमसे पूछा जाय, तब बोलना । "

यह सुन कर फिर मैं कुछ न बोली और टकटकी बांध और कान खड़े करके अदालत की कार्रवाई देखने-सुनने लगी । उस समय वह बड़ा कमरा आदमियों के मारे भर उठा था और उसके अन्दर जितने लोग थे, वे सभी मेरी ओर एक अनोखी दृष्टि से देख रहे थे ! मैंने देखा कि उस भीड़ में काला और नाटा सा एक काना आदमी भी था, जो काले रंग का चोगा पहिरे, सिर पर शमला धरे और नाक पर चश्मा लगाए, गजब तरह से मेरी ओर निहार रहा था !!!

अस्तु, यह सब देख-सुन कर मैं हाकिम की ओर देखने और भगवती का स्मरण करने लगी।

उस कमरे में बड़ी भीड़ इकट्ठी होगई थी, इसलिये हाकिम ने अपने अरदलियों को यह हुक्म दिया कि,—" वकील-मुख्तारों को छोड़कर बाकी के सब आदमियों को बाहर निकाल दो । "

हाकिम के मुहं से इतना निकलते ही उस कमरे से "भर्र-भर्र" लोग निकलने और भागने लगे और अरदलियों को विशेष कष्ट

नहीं उठाना पड़ा। जब भीड़ छट गई, तब मैंने देखा कि अब उस कमरे में पंद्रह-बीस आदमी बाकी रह गए हैं। यह देखकर मैंने आप ही आप यह समझ लिया कि, 'ये लोग वकील-मुख्तार होंगे !' इन वकील-मुख्तारों में वह मोटा कलूटा भी था, जिसकी सांप सी डरावनी आंखें मुझे बुरी तरह घूर रही थीं !

अस्तु, अब यह सुनिए कि मजिष्ट्रट साहब के हुक्म से पेशकार साहब कोतवाल साहब के दिए हुए कागजों को सिल-सिलेवार फिर पढ़ने लगे, और जब वे सब कागजों को सुना गए, तब हाकिम ने उन कागजों को ले और उन्हें उलट-पलट कर देखना और कुछ लिखना प्रारम्भ किया। मुझसे अभी कुछ भी पूछा नहीं गया था और बोलने की भी मुझे मना ही थी, इसलिये मैं चुपचाप कभी हाकिम की ओर, कभी कोतवाल की ओर और कभी वहां पर मौजूद वकील-मुख्तारों की ओर देखती और मन ही मन भगवती का स्मरण करती जाती थी।

थोड़ी देर तक उन कागजों के देखने और कुछ लिखने के बाद हाकिम ने वहां पर मौजूद कोर्टइन्सपेक्टर से यों कहा,—"इस खूनी औरत को जेल भेजो और कल अव्वल वक्त में इस असामी को यहां हाजिर करो।"

इस हुकुम को सुनकर कोर्टइन्सपेक्टर चार कांस्टेबिलों के घेरे में मुझे करके कचहरी से बाहर हुए।

बाहर आने पर मैं फिर एक किराए की गाड़ी पर सवार कराई गई और कोर्टइन्सपेक्टर व चार कांस्टेबिलों के साथ जेलखाने पहुंचाई गई। जेल के अन्दर घुसने पर मैं जेलर साहब के जिम्मे की गई और उन्होंने मुझे एक तंग कोठरी में बन्द कर दिया।

कुछ दिन रहने पर मुझसे रसोई खाने के लिये कहा गया; पर जब मैंने केवल कच्चा दूध मांगा, तो उसका कोरा जवाब दिया गया और सारी रात मैं बिना दाने-पानी के रक्खी गई। किन्तु

दूसरे दिन मुझे नौ बजे के समय सेर भर कच्चा दूध दिया गया, जिसे मैं पीगई और उसके बाद गाड़ी पर सवार कराई जाकर कचहरी पहुंचाई गई।

लेकिन उस दिन भी कोई विशेष बात नहीं हुई। क्योंकि एक तो हाकिम ही कुछ देर करके आए थे, दूसरे जब वे कई और आवश्यक कामों से खाली हुए, तब मैं उनके सामने पेश की गई।

उस समय मुझे कोतवाल साहब के पेश किए हुए सब कागज फिर से सुना दिए गए और मुझसे यों कहा गया,—"अब तुम अपना बयान लिखवाओ।"

यह सुनकर मैंने अपना वही बयान—वही सच्चा बयान,—लिखवाया,जो रसूलपुर के थाने पर एक अंगरेज अफसर के सामने लिखवाया था। इसके बाद मैंने हाकिम की ओर देख और बहुतही गिड़गिड़ा कर यों कहा कि,—"धर्मावतार! जिस कागज पर मेरे अंगूठे का निशान है, उस कोरे कागज पर कोतवाल साहब ने बरजोरी मेरे अंगूठे की छाप लेली थी और पीछे उस सादे कागज पर अपने-मन-मानता बयान लिख मारा है। इसलिये वह मेरा लिखाया हुआ बयान कभी नहीं है और वह बिलकुल झूठ है। मेरा वही बयान सच्चा है, जिसे मैंने पुलिस के एक साहब के सामने रसूलपुर के थाने पर लिखवाया था। बस, जो कुछ मैंने अपने उस बयान में कहा था, वही बात मैंने आज हजूर के सामने भी कही है; इसलिये मुझ दुखिया-अभागी की यही अरज है कि मेरा दिया हुआ बयान ही सच्चा समझा जाय और मुझे बेकसूर समझकर छोड़ दिया जाय।"

इस पर हाकिम ने कुछ न कहा और मुझे फिर दूसरे दिन हाजिर करने का हुक्म देकर वे उठकर चले गए।

मैं फिर भी पहिले दिन की भांति जेल पहुंचाई गई और फिर बदस्तूर तीसरे दिन हाकिम के आगे हाजिर की गई।

इक्कीसवां परिच्छेद।

मजिष्ट्रेट।

"अदण्ड्यान्दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति॥"

(भगवान्मनुः)

मेरा मामला जब शुरू हुआ, तब कोतवाल साहब ने हाकिम के आगे खड़े होकर यों कहा,—"हुजूर! इस औरत (मेरी ओर उँगली से बतला कर) के जिन तीनों फ़ज़्लू वगैरह हरवाहों के हाजिर करने का हुक्म हुजूर ने दिया था, वे कल रात को कानपुर की कोतवाली में मर गए, वे तीनों सिर्फ दो दिन के बुखार में कूच कर गए; इस लिये अब उनका हाजिर करना गैर मुमकिन है। हां, रसूलपुर गांव के रामदयाल वगैरह छओं चौकीदार हाजिर हैं।"

यह सुन कर हाकिम (मजिष्ट्रेट) ने उन छओं को अपने सामने बुला कर उन सभों का बयान लिया। मजिष्ट्रेट के सामने भी उन (रामदयाल-वगैरह) छओं ने अपने बयान में वेही बातें कहीं, जो रसूलपुर के थाने पर पुलिस के अंगरेज अफसर के सामने कही थीं। इसके बाद हाकिम ने मेरी ओर देख कर यों कहा,—

"दुलारी, तुम्हारा दो किस्म का बयान मेरे आगे है। अब तुम यह बतलाओ कि उन दोनों में कौन सा सच्चा और कौन सा झूठा है?"

यह सुन कर मैंने कहा,—"हुजूर, यह बात तो मैं गरीबपरवर के सामने कह चुकी हूं कि, 'मेरा वही बयान सच्चा है, जो कि मैंने रसूलपुर के थाने पर अंगरेज अफ़सर के सामने लिखाया था।' इसके अलावे, कानपुर की कोतवाली में मैंने अपना कोई बयान नहीं लिखवाया है। कोतवाल साहब ने जो कागज पेश किया है और जिस पर मेरे अंगूठे की छाप है, वह किस किस्म का कागज है,

यह बात भी मैं हजरतसलामत के आगे कह चुकी हूँ। मेरा तो यही कहना है कि मैं बिल्कुल बेकसूर हूं इसलिये हजूर दया करके मुझ अनाथ और निरपराध लड़की को छोड़ दें; क्योंकि बेकसूर को दण्ड देना न्यायी हाकिम का काम नहीं है।"

मेरी बात सुन कर हाकिम ने मेरी ओर करुणापूर्ण दृष्टि से देखा और यों कहा,—"दुलारी, यह बात तो तुम जानती ही हो कि सात-सात खून हो चुके हैं ?"

मैं बोली,—"हां, हुजूर ! यह बात मैं जानती हूं।"

हाकिम,—"और यह बात भी तुमने मंजूर की है कि, 'हिरवा नाऊ का गला तुमने घोंटा' ?"

मैं बोली,—"लेकिन मेरा इरादा खून करने का तो था नहीं।"

हाकिम,—"सुनो, दुलारी ! तुमसे जितना सवाल किया जाय, तुम उसका ठीक ठीक उतना ही जवाब दो।"

मैं,—"बहुत अच्छा।"

हाकिम,—"तो हिरवा की जान तुम्हारे ही हाथ से गई न ?"

मैं,—"हां, साहब !"

हाकिम,—"ऐसी हालत में तुमको खून करने के जुर्म में क्यों न सजा दी जाय ?"

मैं,—"हजरत ! यहां पर यह भी तो विचारना चाहिये कि उस समय मेरे चित्त की क्या अवस्था थी ? क्या उस समय की अपनी दशा का हाल मैंने अपने बयान में नहीं कहा है ?"

हाकिम,—"कहा तो है, मगर इन सात-सात खूनों का इलजाम तुम पर लगाया गया है; ऐसी हालत में मैं किस तरह तुम्हें छोड़ सकता हूं ?"

मैं,—"तब फिर आपके जी जी में आवे, सो आप करें; क्योंकि आप हाकिम हैं। और मैं ? मैं एक महातुच्छ और अनाथ लड़की हूं। ऐसी अवस्था में भला मैं आपकी मरजी के खिलाफ क्या

कर सकती हूं ? "

यह सुनकर हाकिम ने मुझसे कहा,—"दुलारी, तुम अगर चाहो तो अपनी तरफ से किसी वकील या मुख्तार को खड़ा कर सकती हो ! "

इसपर मैंने यों कहा,—"मेरे पास इस समय एक फूटी कौड़ी भी नहीं है ! फिर बिना पैसा लिये, कोई वकील या मुखतार मेरे वास्ते कैसे खड़ा हो सकेगा ? "

हाकिम ने कहा,—" नहीं , पैसे—रुपये की कोई जरूरत नहीं है, अगर तुम चाहो तो सरकारकी तरफ से मुफ्त में तुमको वकील-मुखतार मिल सकते हैं ।"

मैं बोली,—" नहीं, हुजूर ! इसकी मैं कोई आवश्यकता नहीं समझती । क्योंकि वकील-मुखतार दिन को रात और रात को दिन, या सच को झूठ और झूठ को सच थोड़े ही कर देंगे ? ऐसी अवस्था में झूठ मूठ में किसी वकील या मुखतार को खड़ा करके अदालत का व्यर्थ समय नष्ट करना नहीं चाहती । हां, अगर हुजूर हुकुम दें तो मैं हज़रत-सलामत (आप) से कुछ पूछूं ।"

यह सुनकर हाकिम ने कहा,—" तुम जो कुछ पूछना चाहो, बे खौफ़ पूछ सकती हो ।,,

यह सुनकर मैं बोली,—" इस खून की तहकीकात में यह बात साफ तौर पर ज़ाहिर होचुकी है कि,'मेरे घर की सारी चीज-बस्तु गायब होगई हैं । ' क्यों, यह तो ठीक है न ?"

हाकिम,—" हां, ऐसा ही तो ज़ाहिर हुआ है ! "

मैं,—" तो, कौन शख्स मेरे घर की सारी चीजें लूट लेगया ? "

हाकिम,—" यह मैं नहीं बतला सकता; क्योंकि इस बारे में मुझे कुछ मालूम नहीं हुआ है ! "

मैं,—" अच्छा, कोतवाल साहब ने वह जो मेरे अंगूठे की छाप लगा कागज़ पेश किया है, उसमें एकही तलवार का जिक्र है;

पर उस कोठरी में से, जिसमें कि चार-चार लाशें पाई गई थीं, के तलवारें बरामद हुई हैं ? ”

मेरी ऐसी बातें सुन, हाकिम ने कोतवाल साहब की ओर देखकर उनसे यों पूछा,—“ क्यों साहब, उस कोठरी में कै तलवारें पाई गई ? ”

इस पर कोतवाल साहब ने यों कहा,—“ हुजूर, उस कोठरी में से चार तलवारें बरामद हुई थीं ।”

हाकिम,—(मुझसे)“ तुमने अपने सवालका जवाब पाया न?,,

इस पर मैंने कहा,—“ अच्छा, हुजूर ! अब आपही न्याव करिये कि जिस कागज में मेरे अंगूठे की छाप लग रही है, वह कैसे सच्चा समझा जा सकता है ? क्योंकि उस अंगूठे की छाप वाले परचे में तो सिर्फ एक तलवार का ज़िक्र है, मगर उस खूनवाली कोठरी में से चार तलवारों का पाया जाना हुजूर के सामने अभी कोतवाल साहब ने मंजूर किया है। क्या,इतनी बड़ी भूल-कोतवाल साहब की भूल,का फायदा मैं नहीं उठा सकती ? ”

यह सुनकर मजिस्टर साहब ने कोतवाल साहब की ओर देखा, जिसपर उन्होंने यों कहा कि,—“हुजूर, मैं एक पुराना कारगुज़ार मुलाज़िम हूं और इस लड़की के साथ मेरी कोई दुश्मनी नहीं है । फिर भला, मैं इसे नाहक फँसाने की नीयत से कोई बेजा कार्रवाई क्यों करूंगा ! पस, मेरे आगे जो कुछ बयान इस नौ उम्र औरत ने दिया, वही ज्यों का त्यों हुजूर की खिदमत में पेश किया गया। अब रही तलवार की बात,—सो, उसके बारे में यह अर्ज है कि वे चारों तलवारें इसके मकान से लाई जाकर कोतवाली में रक्खी हुई हैं और रजिष्टर में दर्ज भी की जा चुकी हैं। हां, इसमें उनका जिक्र करना रहगया ।

कोतवाल के चुप होते ही मैंने हाकिम की ओर देखकर यों कहा,—“ लेकिन, यह गलती ज़रूर हुई है कि उन चारों तलवारों

का जिक्र इज़हारों की मिसिल में दर्ज होना रह गया, जिसका फायदा मुझे होना चाहिये।"

मेरी इस बात को सुन और कुछ देर तक चुप रहकर हाकिम ने मुझसे यों कहा,—"खैर, तुमको और क्या कहना है?"

मैंने कहा,—"हुजूर, ज़रा इस बात पर गौर तो किया जाय कि जिन कालू वगैरह हथियारबन्द लुटेरों ने मेरा सारा घर लूट लिया, उन्हें भला मैं अकेली क्योंकर मार सकती थी?"

हाकिम,—"चालाक औरतों ने अकसर धोखा देकर खून कर डाले हैं, क्योंकि इज्जत-आबरू के बचाने का एक ऐसा ख़याल औरतों में हुआ करता है कि जिस (ख़याल) की वजह से वे (औरतें) भारी से भारी काम कर डालने की ताकत पाजाती हैं।"

यह सुनकर मैं बोली,—"अच्छा, इस बात पर तो ध्यान दिया जाय कि अपने घर में हुए उन पांच-पांच खूनों की इत्तला करने के वास्ते मैं खुद रसूलपुर के थाने पर गई थी। अब यहां पर यह सोचने की बात है कि अगर मैं ही खूनी होती तो खून की इत्तला करने जाती, या अपनी जान बचाने के लिये कहीं भाग जाती?"

हाकिम,—"अकसर चालाक और दिलेर खूनी अपने कसूर को किसी और पर मढ़ देने की गरज़ से अपने किये हुए खून की इत्तला करने खुद थाने पर पहुंच जाया करते हैं। मगर जब उन की सारी कारस्तानी का भंडा फूट जाता है तो वे अखीर में लाचार होकर अपने कसूर को अदालत के सामने कबूल करते और सज़ा पाते हैं। पस, अगर तुम भी कहीं भाग गई होतीं, तो फौरन या देर में जरूर ही पकड़ी जातीं और सज़ा पातीं। तुमको यह बात अच्छी तरह जान लेनी चाहिए कि गवर्नमेंट की अमलदारी में कसूर करके कोई भी मुजरिम ज़ियादह दिन तक लुकछिप कर अपने तईं हर्गिज़ नहीं बचा सकता। बस, एक न एक दिन वह ज़रूर ही पकड़ा जाता

और सज़ा पा जाता है ।"

यह सुनकर फिर मैंने यह पूछा,—"अच्छा' यह तो बतलाया जाय कि रसूलपुर के चौकीदारों ने अपने बयान में यह कहा है कि, 'मेरी, यानी मुझ दुलारी की बैलगाड़ी पर सवार होकर अबदुल्ला थानेदार हींगन चौकीदार के साथ मेरे गांव की ओर गया था।' क्यों, यह तो ठीक है न ?,,

हाकिम,—"हां, यह सही है।,,

मैं,—"तो फिर मेरी वह गाड़ी या बैलों की जोड़ी क्या हुई ?,,

हाकिम,——"यह मुझे नहीं मालूम।,,

मैंने कहा,——"पर गवाहों की गवाही से यह बात साबित हो गई है कि, 'अबदुल्ला दौलतपुर गांव में इक्के पर चढ़ा हुआ पहुंचा था; और वहां से रसूलपुर गांव में जब वह रात को वापस आया था, तब भी इक्के ही पर सवार होकर आया था।' क्यों, यह भी ठीक है न ?,,

हाकिम,—"हां, यह भी सही है।,,

मैं,—"तो इस से यह बात साफ तौर पर ज़ाहिर हो सकती है कि मेरी गाड़ी और बैलों की जोड़ी अबदुल्ला ने ही कहीं रास्ते में टरका दी होगी ?,,

हाकिम,—"यह मैं नहीं कह सकता।,,

मैंने फिर कहा,—"हुजूर, एक बात और भी है,—और वह यह है कि रसूलपुर के चौकीदारों ने अपने बयान में यह कहा है कि, 'जब थानेदार लौट आए और खाना-पीना खाकर शराब पीने लगे; तब उन्होंने हम-छओं चौकीदारों को यह हुकुम दिया कि,-'अब तुम सब अपनी कोठरी में जाकर आराम करो, क्यों कि अब मैं उस कैदी औरत का इज़हार लूंगा और उससे उन खूनों को कबूल कराऊंगा। इससे मुमकिन है कि वह औरत खूब शोरोगुल मचावे, मगर तुम लोग उसकी चीख-चिल्लाहट सुनकर यहां मत आना और अपनी

कोठरी में ही रहना। यहां मेरे पास सिर्फ़ हींगन रहेगा। 'क्यों, हुजूर! ऐसा ही इज़हार है न?,,

इस पर हाकिम ने कहा,— "हां, यह सही है।,,

मैं बोली,—"तो क्यों हुजूर! उस थानेदार की उन बातों से क्या उसकी बुरी नीयत का पता नहीं लग सकता?,,

हाकिम,——"शायद!,,

मैंने कहा,—"मैं तो यही समझती हूं कि उस थानेदार ने मेरी गाड़ी और बैलों की जोड़ी को भी गायब किया और मेरा "धर्म" भी बिगाड़ना चाहा?,,

हाकिम,—"अच्छा, फिर?,,

तब मैंने हाथ जोड़ कर यों पूछा,—"हजूर! यद्यपि अबदुल्ला और हींगन को मैंने खुद कभी नहीं मारा है; वरन मैंने तो खून खराबा करने से हींगन को भी रोका था; जैसा कि मैं अपने बयान में कह आई हूं। लेकिन थोड़ी देर के लिये अगर यह मान भी लिया जाय कि अपने धर्म बचाने के लिये मैंने उन दोनों बदकारों को मारा या मरवा डाला, तो इसमें क्या बुरा किया? क्यों कि स्त्रियों के पास सतीत्व से बढ़कर कोई धन नहीं है और फिर यह धन भी ऐसा विचित्र है कि यदि एक बेर यह लुट जाय तो जीतेजी फिर कभी नहीं मिल सकता। बस, गया, सो गया, ऐसी हालत में अपने अनमोल सतीत्वधर्म की रक्षा के लिये स्त्रियां न जाने क्या क्या कर डालती हैं!,,

मेरी इन लम्बी चौड़ी बातों को सुनकर हाकिम ने कहा,—"अब यह बात तुम जज साहब के आगे कहना। भला, इतने ऐंच-पेंच के साथ तुमने खून करना मंजूर तो किया! खैर, तुम्हें अब दौरे सुपुर्द करता हूं। वहां पर जज साहब के आगे जो कुछ तुमको उज्र करना हो, सो करना; क्योंकि मैं तुमको बेकसूर छोड़ देने की ताकत नहीं रखता।"

यह सुन और घबराकर मैंने कहा,—"अरे धर्मावतार! भला, मैंने खून करने की बात कब सकारी! अजी साहब, मैं तो वहां से भी नहीं भागी थी और उन दोनोंके कट मरने पर-भाग जाने के मौके को हाथ में आया हुआ समझ कर भी-मैं वहांसे नहीं भागी थी और खुद उन चौकीदारों के पास जाकर मैंने उन दोनों के कट मरने की बात कही थी।"

हाकिम ने कहा,—"अब मैं कुछ सुनना नहीं चाहता।"

इस पर मैंने खूब जोर से चिल्लाकर कहा,——"मत सुनो! तुम मुझ अनाथ निरपराधिनी की बात मत सुनो! पर जो हमारे-तुम्हारे, बल्कि सारे जहान के घट-घट में छिपा हुआ बड़ा हाकिम है, वह ज़रूर बेकसूर की पुकार सुनेगा।"

पर इस बातका जवाब दिये बिना ही हाकिम ने मुझे वहांसे हटाने का हुक्म दिया और कई सिपाही मुझे अपने घेरे में करके वहांसे चलते बने।

कचहरी के बाहर जब मैं निकली तो मेरे कानों में दो आदमियों की कही हुई ये बातें पहुँचीः——

एक ने कहा,—"वाह, री, औरत! इसने क्याही माकूल बहस की है! अगर यह पढ़ी लिखी होती तो अच्छे अच्छे वकीलों के कान काटती!!!"

इस पर दूसरे ने कहा,—"तो, खैर मनाओ कि तुम्हारे कान कटने से बच गये!!!"

ये सब बातें मेरे कानों को सुनाई तो दीं, पर मैंने आंखें घुमा कर यह न देखा कि वे बातें किन दो शख्सों में हुई थीं। निदान, मैं फिर जेलखाने पहुंचाई गई और कई दिनों तक वहीं पड़ी पड़ी अपने खोटे नसीबे को कोसती रही।

बाईसवां परिच्छेद ।

जज ।

"अपराधिनमपि राजा,
क्वचिदपि मुञ्चतु न पापमिह मन्ये ।
किन्तु निरपराधिनमुत,
महदाप्नोत्ययशो हि दण्डयन्निति ॥"
(व्यासः)

एक दिन मैं फिर जेल से निकाली जाकर गाड़ी पर सवार कराई और कचहरी पहुंचाई गई ।

कचहरी में उस दिन मैं जिन हाकिम के सामने पेश की गई,—सुना कि, 'यही जज साहब हैं ।'

वे एक अंगरेज मालूम पड़ते थे और नौ जवान आदमी थे । उन के सामने जब मैं पेश की गई तो उन्होंने मेरा नाम-धाम पूछकर मुझ से यह जानना चाहा कि, 'मेरा कोई वकील है कि नहीं ?' इस पर जब मैंने उन्हें यह बात साफ तौर पर समझादी कि, 'मेरा न तो कोई वकील-मुख्तार है और न मैं किसी को इस मुकद्दमे की पैरवी के लिये खड़ा ही करना चाहती हूं । हां, यह मैं जरूर चाहती हूं कि पुलिस के अंगरेज़ अफसर के सामने जो मैंने ठीक ठीक इज़हार दिया है, उस पर गौर करके मेरे लिये इन्साफ़ किया जाय ।

यह सुनकर उन्होंने यह कहा कि, "अगर तुम चाहो तो सरकार की ओर से तुम्हारे मुकद्दमे की पैरवी के लिये एक वकील मुकर्रर कर दिया जाय; ,, पर जब मैंने इस बात को न सकारा, तब मुकद्दमे की कार्रवाई शुरू की गई ।

पहिले कोतवाल साहब और बाद उनके रसूलपुर व कानपुर के कुछ कांस्टेबिलों के इजहार हुए । इसके बाद उन पुलिसके बड़े साहब का भी बयान हुआ, जिन्होंने मुझे रसूलपुर थानेपर गिरफ्तार किया था । "

यहां तक सुनकर साहब बहादुर ने मुझ से कहा— "ठहरो;" और इसके बाद भाई दयालसिंह से कुछ अंगरेजी में कहा; जिसे सुन कर भाईजी ने मुझ से यों कहा,—"दुलारी! बस; अब हमलोगों का काम बन गया, इस लिये व्यर्थ जज के यहां की बातों को फिर से दुहराने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि जज के सामने भी वेही सब बातें हुईं, जो मजिस्ट्रेट के सामने हो चुकी थीं और अन्त में जज ने तुम्हें फांसी की सज़ा दी। इस लिये अब फिर उन सब बातों के कहने की कोई ज़रूरत नहीं है। हां, कुछ और बात हुई हो तो उसे कहो।"

यह सुनकर मैंने कहा,—"अब इसके आगे तो हुजूर; वही बात हुई, जो ऐसे मामलों में हुआ करती है। अर्थात् कई दिनों तक मुकद्दमे की पेशियां हुईं, सरकारी वकील और जज ने मुझसे बड़ी कड़ी जिरहें की और अन्तमें मुझे "खूनी औरत" करार देकर जज ने फांसी का हुक्म सुना दिया! बस, मैं उस दिन से फिर जेल के बाहर न की गई और यहीं पड़ी पड़ी अपनी जिन्दगी के दिन पूरे कर रही हूं। अच्छा, हुजूर! अब मुझे क्या हुकुम होता है?"

यह सुनकर साहब बहादुर ने भाई दयालसिंह से अंगरेजी में कुछ कहा, जिसे सुनकर उन्होंने मुझ से यों कहा—"बेटी, दुलारी! अब हमलोग यहांसे जाते हैं। इस मामले पर खूब ग़ौर करके तुम्हें कल या परसों इस बात की खबर की जायगी कि तुम्हारी रिहाई हो सकती है, या नहीं।" इतना कहकर वे उठ खड़े हुए, साहब भी उठ कर एक तरफ को बढ़े और बारिस्टर साहब ने उठते उठते मुझसे यह कहा—"कल तुम्हारे चचा साहब को लेकर मैं आऊंगा।"

इसका जवाब मैंने केवल—"बहुत अच्छा—" कहकर दिया और वे सब चले गए।

———०———

तेईसवां परिच्छेद ।

पुन्नी—मुन्नी ।

"सेविकां त्वां न जानामि,
सत्यं जानीहि सुन्दरि ।
स्यान्मे सहचरी नित्यं,
त्वद्विधा शीलशालिनी ॥"

(कथासरित्सागरे.)

उन सब सज्जनों के जाने के कुछही देर बाद पहिले कही हुई उन्हीं दोनों कहारियों को साथ लिये हुए जेलर साहब मेरे पास आए और बोले,—"दुलारी, अब तुम जरा न घबराओ और परमेश्वर पर भरोसा रक्खो । उस दीनानाथ ने एक ऐसे दीनानाथ को तुम्हारी मदद के लिये भेजा है कि वे अवश्य ही तुम्हारा इस संकट से उद्धार करेंगे । खैर, अब तुम इन दोनों कहारियों के साथ जाकर ज़रूरी कामों से छुट्टी पा आओ ।"

यह सुनकर मैं उठी और उन दोनों के साथ जाकर और मामूली कामों से छुट्टी पाकर थोड़ी ही देर में लौट आई । तब तक जेलर साहब वहीं पर ठहरे हुए थे । मेरे आने पर उन कहारियों में से एक मेरी बालटी लेजाकर उसमें ताजा पानी भरलाई और दूसरी जाकर एक कोरी हंड़िया में दूध ले आई । मैंने उठ कर दूध पिया और कुल्ला-वल्ला करके जेलर साहब से यों कहा,—"जेलर साहब, यदि कोई हरज न हो तो इन दोनों कहारियों को मेरे पास छोड़ दीजिये, क्योंकि इनके पास रहने से बोलने चालने से ज़रा जी बहला रहेगा ।"

यह सुनकर जेलर साहब ने कहा,—"अच्छी बात है, ये तो तुम्हारी टहल चाकरी के लिये मुकर्ररही की गई हैं ।"

और फिर उन दोनों की ओर देखकर उन्होंने कहा,—"पुन्नी-मुन्नी ! जाओ, तुम दोनों अपने ओढ़ने और बिछाने के

कम्बल ले आओ।"

यह सुनकर वे दोनों बड़ी मँगन हुईं और दौड़ी हुई जाकर अपने ओढ़ने बिछाने के कंबल उठा लाईं।

उनके आने पर जेलर साहब ने उनसे पूछा,—"तुम दोनों खा-पी चुकी हो न?"

इस पर उन दोनों ने—"हां—" कहा। तब जेलर साहब ने उन दोनों को मेरी कोठरी के भीतर करके उसके दरवाजे में ताला लगा दिया और उन दोनों से कहा,—"दुलारी की तुम दोनों खिदमत करना।"

उस समय मेरी कोठरी के आगे वाले बरामदे में लटकती हुई लालटेन जलादी गई थी और रतन कांस्टेबिल के बदले में दूसरा सिपाही आकर कन्धे पर बन्दूक धरे हुए बाहर टहलने लग गया था।"

उस कांस्टेबिल की तरफ देखकर जेलर साहब ने यों कहा,—"बुझावन सिंह, देखना, इस लड़की दुलारी को तुम टोकना-ओकना मत, क्योंकि यह अपनी इन दोनों हम उम्र कहारियों से बात चीत करके अपना जी बहलावेगी। और सुनो, जब तुम्हारा पहरा बदले, तब यही बात तुम अपने जोड़ीदार को भी समझा देना।"

यों कहकर जेलर साहब ने मेरी कोठरी के ताले की ताली बुझावनसिंह के हाथ में देकर फिर यों कहा,—"लो इस ताली को तुम अपने पास रक्खो। अगर इन सबों को रात के वक्त कुछ ज़रूरत पड़े तो तुम ताला खोलकर इन्हें कोठरी से बाहर निकलने देना और यही बात अपने जोड़ीदार से भी ताली देकर समझा देना।"

यह सुन और ताली लेकर बुझावनसिंह ने कहा,—"बहुत अच्छा, हुजूर! ऐसाही किया जायगा।"

यह सुनकर जेलरसाहब चलेगए,दुखावनसिंह बाहर चहल कदमी करने लगा, मैं कोठरी की दीवार से सट कर अपने एक कंबल पर बैठ गई, और मेरे दाहिने पैर के पास पुन्नी और बायें के पास मुन्नी अपने अपने कंबल बिछाकर बैठगईं। फिर हम-तीनों ने अपने अपने कंबल ओढ़ भी लिये।

उन दोनों के साथ क्या बातें की जांय, यह मैं सोचही रही थी कि मेरे दाहिने पैर को पुन्नी और बायें को मुन्नी खैंचकर दबाने लगीं! यह देखकर मैंने अपने दोनों पैरों को खींचकर कंबल के अंदर छिपा लिया और उन दोनों की ओर मुस्कराहट के साथ देखकर यों कहा,—"क्यों भाई! यह क्या करने लगी थीं?"

इस पर मुन्नी तो खिलखिला कर हँसने लगी और पुन्नी ने यों कहा,—"मुझे जेलर साहब का हुकुम हुआ है कि,—"जब तक आप यहां रहेंगी, तब तक हम दोनों आपकी खिदमत करेंगी!"

यह सुन और हँसकर मैंने उन दोनों से यों कहा,—"वाह, यह भी अजीब तमाशा है! जेल में और खिदमत! फांसी पड़ने वाली के लिये टहलनियों का बंदोबस्त! अरे भाई! जैसी तुम कैदी हो, वैसी ही मैं भी कैदी हूं। वल्कि मैं तो तुम दोनों से भी गई गुजरी हूं। क्योंकि तुमतो कुछ दिनों में यहां से रिहाई पाओगी, पर मेरे लिये तो फांसी का हुक्म होचुका है। ऐसी दशा में यह टहल-चाकरी का स्वांग क्यों? भाई, मैंने तो तुम दोनों को अपनी हमजोली (समवयसी) जानकर इसलिये अपने पास बुला लिया है कि जिसमें आपस में तनिक बात चीत करके अपना जी बहलाऊं। अच्छा, मेरा हाल तो तुम सब जानती ही हो। अब अपनी कहानी सुनाओ।

यह सुनकर पुन्नी कहने लगी,—"हम-दोनों सगी बहिनें हैं। मैं बड़ी हूं, मेरा नाम पुन्नी है, और यह मुन्नी छोटी है। मेरी सोलह और मुन्नी की चौदह बरस की उमर है। मेरी मां लड़कपन

में ही मरगई थी, तब मेरे बाप एक स्त्री से सगाई करके कलकत्ते चले गये। और हम-दोनों को मेरी नानी अपने घर कानपुर के सिरकी महाल में लेगई। उस समय मैं छः और मुन्नी चार बरस की थी। हम लोगों के बाप जबसे गये, तबसे आज तक उन्होंने हमलोगों की कोई खोज खबर नहीं ली। नहीं मालूम कि अब वे कहां हैं, और जीते हैं या मरगये। मेरी नानी एक भले आदमी के यहां धन्धा करती थी और हम दोनों कुछ और स्यानी होने पर उसी सिरकी महाल की कन्या पाठशाला में पढ़ती थीं। जब मैं ग्यारह और मुन्नी नौ बरस की हुई, तब मेरी नानी ने हम दोनों का ब्याह महेसरी महाल के दो लड़कों से कर दिया। वे दोनों भी सगे भाई थे और नौकरी करते थे। पर फूटे करम की गति तो देखिये कि सालभर के अन्दर ही हम दोनों की दोनों रांड होगईं, और उसी सदमे में मेरी नानी भी कूंच करगई। फिर हम दोनों का कहीं भी ठिकाना न रहा। हम दोनों के सास—ससुर ने डाइन—डाइन कह कर हम दोनों को दुरदुरा दिया और इधर जले पेट की आग बुझाने का भी कोई सहारा न रहा। नानी के पास कुछ जमा पूंजी तो थी ही नहीं, इसलिये जब मकान के मालिक ने हम दोनों से चार महीने का एक रुपया किराये का मांगा तब हम दोनोंने लाचार होकर स्कूल छोड़ दिया और उसी जगह हम दोनों नौकरी करने लगीं, जहां मेरी नानी नौकरी करती थी।"

इतना कहकर पुन्नी ज़रा चुप होगई, क्योंकि बेचारी मुन्नी रोने लग गई थी। इसलिये मैंने और पुन्नी ने बहुत कुछ समझा बुझाकर उसे चुप कराया और ज़बरदस्ती सुला दिया। कुछ देर तक तो वह फिरभी सिसकती ही रही, पर अन्त में जब वह सोगई तब पुन्नी फिर अपना किस्सा यों कहने लगी।

पुन्नी ने कहा,—"उसी महाल में, जिसमें मैं रहती थी, एक

भले आदमी कायस्थ रहते हैं, उन्हीं के यहां मेरी नानी धन्धा करती थी और वहीं पर फिर हम दोनों बहिनें भी चाकरी करने लग गई थीं । मेरे मालिक लाला सूकीलाल और उनकी स्त्री सलोनीदेई हम दोनों बहिनों पर बड़ी दया करते थे । महीना तो हम दोनों का दोही रुपया था, पर पेट भर खाना और तन भर कपड़ा ऊपर से मिल जाता था। उससे हम दोनों मजे में अपना दिन काटती थीं और चार आना महीना घर का भाड़ा भी देदिया करती थीं । यों चार बरस तो हम लोगों के दिन मजे में कट गए, पर जब पांचवां साल शुरू हुआ, तो हम लोगों पर फिर मानों बिपत का पहाड घहरा पड़ा । उसकी कहानी यों है कि,—" उसी बीच लाला सूकीलाल और उनकी बीबी सलोनीदेई का प्लेग से परलोक बास होगया और उनके नौजवान बेटे, जो नए वकील हुए थे और जिनका नाम लूकीलाल था, हम दोनों बहिनों को बुरी नजर से देखने और छेड़ने लगे । उनकी औरत हमही दोनों के बराबर कच्ची उमर की बच्ची थी, इसलिये उस बेचारी का लूकीलाल पर कोई बस नहीं चलता था । आखिर, हम दोनों बहिनों ने आपस में यह सलाह पक्की की कि कहीं दूसरी नौकरी तलाश करके इस धन्धे को छोड़ देना चाहिए । बस, फिर हम दोनों दूसरे धन्धे की भी फिकर करतीं और उस पुराने धन्धे पर भी बराबर जाती थीं । सबेरे आठ बजे हम दोनों धन्धे पर जातीं और दीया बलते बलते अपने घर लौट आती थीं । मैं इतना भी न करती, क्योंकि मुझे एक दिन भी वहां नहीं रहना चाहती थी, पर लूकीलाल की नेक बीबी लौंगिया मेरी इतनी खुशामद करती थी कि उसका मुँह जोहकर मुझसे उसका धन्धा छोड़ते नहीं बनता था । आखिर, वही काल—घड़ी आ पहुंची, जिसके कारण हम—दोनों बहिनों को इस जेल में आना पड़ा । बात यह हुई कि एक दिन जब सांझ होजाने पर हम दोनों अपने घर जाने के लिये जनाने किते से

निकल कर सदर दरवाजे की तरफ बढ़ी, तब लूकीलाल ने तेजी के साथ अपने बैठक में से निकल कर ज़ोर से मेरा हाथ पकड़ा और मुझे अपने बैठके में खींच लेजाना चाहा। यह देख मुन्नी ने अपने हाथ की तरकारी की पथरी ऐसे ज़ोर से उसके माथे में खैंच मारी कि उसका सिर फूट गया, झर झर झर झर खून बहने लगा और वह चक्कर खाकर वहीं पर गिर गया! यह हाल देखकर मैं तो बहुत डरी, पर ढीठ मुन्नी ने फिर वहां पर ज़रा भी दम न लिया और मुझे खींचे हुई वह इस मकान के बाहर निकल अपने घर की ओर चल पड़ीं। खैर, हम दोनों अपने घर पहुंची और घर में दीया बाल और बैठकर मैंने मुन्नी से कहा,—"अरे, यह तूने क्या किया?"

मुन्नी ने तनकर यों कहा,—"जो किया सो अच्छा ही किया। उस पापी के पाजीपन का यही इनाम था। मैं कहती थी कि जीजी! अब उस घर का मुंह काला करके दूसरा धंधा देखो, पर तुमने लौंगिया की चिकनी चुपड़ी में आकर मेरा कहना नहीं माना पर नहीं माना। अन्त में आज यह बखेड़ा आखिर खड़ा होगया न! अब कल से दूसरा धंधा देखो और उस घर पर झाड़ू मारो।"

यों कहकर देर तक मुन्नी झनक-पटक करती रही, पर फिर मैंने उससे कुछ न कहा। थोड़ी देर में जब उसका गुस्सा कुछ कम हुआ, तब हम दोनों बहिनों ने कुछ खा पीकर लम्बी तानी। दूसरे दिन बड़े तड़के उठकर हम दोनों बहिनों ने अपनी कोठरी और दालान की झार बुहार शुरू की और फिर चौका चूल्हा लीप पोत और नहा धोकर नौ बजते बजते चूल्हे में आंच बाली ही थी कि इतने ही में पांच चार कांस्टेबिलों को लिये हुए लूकीलाल मेरे घर में घुस आया, और उन सिपाहियों को हम दोनों की ओर दिखला कर यों कहने लगा,—"तुम लोग इन दोनों चोट्टियों को गिरफ्तार करलो। इतने में दरोगाजी भी आजायंगे, तब इनके

घर की तलाशी ली जायगी यों उन सिपाहियोंसे कहकर वह मेरी कोठरी में घुस गया, लेकिन भीतर वह जादे देर तक न ठहरा और तुरन्त बाहर आकर दालान में खड़ी की हुई चारपाई बिछाकर उस पर बैठ गया।"

इतना कहकर पुन्नी ने अपनी भीगी आंखें पोंछीं और फिर यों कहना प्रारंभ किया,—"पुलिस का हंगामा देख सुनकर मेरे घर के और महल्ले के बहुत से आदमी इकट्ठे होगये थे और वे सबके सब पारी पारी से लूकीलाल से यों पूछने लग गये थे कि,—"यह क्या बात है?" इसपर लूकीलाल ने उन सबों से यों कहा कि,—"ये दोनों मेरे यहां काम धंधा करती थीं, सो कल रात को जब ये अपने घर वापस आने लगीं तो मेरे बैठके में से मेरे पान तंबाकू की चांदी की डब्बी, जिसकी कीमत कमसे कम तीस चालीस रुपये होगी, चुराकर लेती आई। इसीलिये मैं पुलिस को लिवा लाया हूं। अगर माल बरामद होगा तो इनको थाने पर भेजा जायगा और जो कुछ न निकला तो पुलिस के साथ मैं वापस चला जाऊंगा।"

वह पापी इतना ही कहने पाया था कि दरोगाजी भी आगए और उन्होंने मेरे मकान के मालिक और दो चार और भी महल्ले के लोगों को साथ लेकर मेरी कोठरी के अंदर जाकर वह चांदी की डब्बी बरामद की !!!"

हाय, यह हाल देखकर हम दोनों बहिनें तो फूटर कर रोने धोने लगीं, और महल्ले के सब आदमी एक एक करके चले गए। इसके बाद मैंने अपनी कोठरी का ताला लगाकर उसकी ताली मालिक मकान के हाथ में देदी और तब दोनों बहिनें थाने में पहुँचाई गई। फिर वहां से कचहरी में हाकिम के सामने हाजिर की गईं और छः छः महीने की सजा पाकर इस जेल के अन्दर भेजदी गईं। मैंने पुलिस और हाकिम के आगे बहुतेरा रोना रोया और लूकीलाल

की सारी बदमाशी का हाल कह सुनाया, और साथही यह भी कहा कि, 'यही मेरी कोठरी के अन्दर घुसकर खुद डिबिया रख आया है।' पर पुलिस या हाकिम ने मेरी एक न सुनी और दोनों बहिनों को जेल भेज दिया। मेरे जेल में आने के पन्द्रह दिन बाद लूकीलाल यहां आया और हम दोनों बहिनों को यों धमकाने लगा कि, 'अबकी बार तो मैंने तुम दोनों को फकत जेलही भिजवाया है, लेकिन इस बार जब तुम दोनों यहां से छूटोगी, तब मैं तुम दोनों को अपने काबू में करूंगा। अगर तब भी तुम दोनों ने कुछ चीं चपड़ की तो फिर सीधा काले पानी या कुली बागान को भिजवादूंगा। हरामजादियो! तुमने मेरा ही टुकड़ा खाकर मेरे ही सिर को तोड़ डाला! अच्छा, अबकी सारी कसर निकाल लूंगा।"

इतना कहकर पुन्नी ने अपनी आंखें पोंछीं और फिर वह यों कहने लगी,—"अब कहिए, सरकार! जेल से छुटने पर मैं किधर की होकर रहूंगी और किस तरह अपनी इज्जत और जान बचाऊंगी?

मैंने पुन्नी की दुःख भरी कहानी सुनकर उसे बहुत कुछ ढाढ़स दिया और यों समझाया कि तुम दोनों भगवान पर भरोसा रक्खो। वही परमात्मा तुम्हारी जान और लाज की रखवाली करेगा।"

यह सुनकर पुन्नी ने कहा,—"नहीं, सरकार! आप अब हम दोनों बहिनों को अपनी सरन में रखलें, तभी हमारी भलाई होगी,,

उसकी इस बेढंगी बात को सुन मैंने हंसकर कहा,—"तो क्या तुम दोनों मेरे साथ फांसी की तख्ती पर चढ़ोगी?"

पुन्नी बोली,—"उस पर चढ़ें आपके दुशमन! अजी सरकार, अब आप कोई अंदेशा न करें, क्यों कि जिन बारिस्टर साहब ने आपके मुकद्दमे को अपने हाथ में लिया है, वे जेलर साहब से छाती ठोंककर यह बात कहते थे कि यह लड़की [अर्थात् आप] बेदाग छूट जायगी। इस लिये मुझे भी इस बात का भरोसा होगया है कि अब आप जरूर छूट जायंगी। तो कहिये कि फिर भी आप

हम दोनों लौंडियों को अपने चरनों में न रख सकेंगी ?"

मैंने कहा,—"पुन्नी ! तू बावली हुई है ! भला सोचतो सही कि यदि मैं छूटभी गई तो मैं भी कहां पर खड़ी होऊंगी ? क्योंकि मेरे लिये भी धरती पर कहीं स्थान नहीं है !"

इसपर शैतान पुन्नी ने हंसकर कहा,—"चाहे धरती पर आप को स्थान न हो, पर किसी के दिल में तो आपके लिये बहुतसी जगह है ?"

यह सुनकर मैंने उसके गाल में एक थप्पड़ जड़ दिया और कहा,—"बस, चुप रह जा दे शरारत न कर !"

यह सुनकर उसने कहा,—"क्यों सरकार, तो फिर बारिष्टर साहब को आप कुछभी मेहनताना न देंगी ?"

"तेरा सिर दूंगी,—यों कहकर मैंने उसे ढकेल दिया, पर वह फिर उठ बैठी और हँसकर कहने लगी,—"खैर, मेरा सिर तो आपके कदमों पर चढ़ही चुका है, इसलिये इसका आप जो चाहे सो कीजियेगा, पर सच बताइये, उनको क्या दीजियेगा ?"

इसपर मैंने झुंझलाकर उससे कहा,-"पुन्नी तू क्या इसीलिये यहां रक्खी गईहै कि बे सिर पैर की बातें करके मेरे जी को जलावै ? इस लिये अब तू सोजा। क्योंकि आधीरात बीत चली और पहरा भी बदल गया। तू जरा सोचतो सही किमैं फांसी का हुक्म पाए हुई एक अभागिन औरत हूं। ऐसी हालत में इस जेल के अन्दर इस तरह की बातें नहीं भली लगतीं।"

मेरी बातें सुनकर पुन्नी मेरे पैरों पर गिर कर बार बार मुझसे क्षमा मांगने लगी। आखिर, मैंने उसे गले से लगाकर जरा सा मुस्कुरा दिया और इसके बाद हम दोनों ने लम्बी तानी।

बाहर पहरे पर जो सिपाही था, वह हम लोगों की बातें नहीं सुन सकता था, क्योंकि वह जरा सा दूर था और बातें धीरे धीरे होती थीं। खैर, थोड़ी देर में मुन्नी की तरह पुन्नी भी नाक

बजाने लगी, पर मुझे नींद न आई और मैं पड़ी पड़ी पुन्नी की बेढंगी छेड़ छाड़ पर गौर करने लगी कि, 'क्या, भगवान् की ऐसी ही इच्छा है। यह मैं सुन चुकी हूं कि ये विलायत से लौटे हुए बारिष्टर साहब मेरी जाति के हैं, और यह भी मुझे मालूम होगया है कि जेल से छूटने पर मेरे जाति भाई अब मुझे कभी नहीं अपनावेंगे। तो फिर मैं यहां से यदि छुटकारा पाजाऊं तो कहां पर खड़ी होऊंगी और किसकी होकर रहूंगी? यह बात मुझे मालूम है कि मेरी जाति के जो लोग विलायत जाकर लौटे हैं, वे बिरादरी से खारिज कर दिये गये हैं और इधर मैं भी अब जेल से छुटने पर जात पांत में नहीं खड़ी होने पाऊंगी। तब फिर वैसी दशा में मैं क्या करूंगी! क्या नारायण ने मेरे लिये वैसाही विधान किया है कि मैं भी उन्हीं लोगों में जाकर मिलूं, जो जाति से बाहर करदिये गये हैं!!! खैर जो भगवान ने ठीक कर दिया होगा, वही होगा; पर अभी फांसी की तख्ती से तो पिंड छूटै!"

इसी तरह की उधेड़ बुन में देर तक मैं डूबी रही, इसके बाद नींद महारानी ने कब मुझे अपनी मुलायम गोद में ले लिया, इसकी मुझे कुछभी सुध-बुध न रही।



चौबीसवां परिच्छेद ।

चाचा !

" सतीनां तु बहिष्कारः,
समाजे यत्र दृश्यते ।
स्वीकारश्चासतीनां सः,
प्रयातु विलयं त्वरित ,, ॥
(व्यासः)

नींद जब खुल गई, तब मैंने क्या देखा कि पुन्नी और मुन्नी मेरे पैर दाब रही हैं । यह देखकर मैं उठ बैठी और ताला खुलवाकर उन दोनों के साथ नहाने—धोने चली गई । उस समय सात बज गए थे । एक घण्टे में जब हम सब निबट कर आगईं, तब पुन्नी मुन्नी तो रसोई खाने चली गई और मैं अपनी कोठरी में बैठकर भगवान का ध्यान करने लगी ! नारायण का स्मरण तो मैं नित्य ही किया करती थी, पर आज बहुत ही जी लगाकर भजन—सुमिरन करने लगी । दस बजे जेलर साहब आए और मुझे दूध पिला कर बोले कि,—" आज बारिस्टर साहब का पत्र लेकर एक सज्जन तुमसे मिलने आए हैं । वे अपने को तुम्हारा चचा और अपना नाम रघुनाथ प्रसाद तिवारी बतलाते हैं । यदि तुम उनसे मिलना चाहो तो उन्हें मैं यहीं पहुंचा दूं । "

यह सुनकर मैंने जब " हामीं " भरी, तब जेलर साहब चले गए और थोड़ी ही देर में एक कैदी से एक कुर्सी लिवाए हुए जेलर साहब मेरे चचा के साथ आ पहुंचे । चचा को देखते ही मैं सिर पीट और बड़े ज़ोर से पुक्का फाड़ कर रोने लगी । चचा भी डाढ़ें मार कर रो उठे और जेलर साहब पारी पारी से हम दोनों को समझाने बुझाने लगे । मैंने देखा कि जेलर साहब भी रूमाल से अपनी आंखें पोंछ रहे हैं और वे दोनों पुन्नी मुन्नी भी बाहर खड़ी हुई रो रही हैं ।

खैर आधे घण्टे में जब मैं शांति हुई तो जेलर साहब पुत्री-मुन्नी को चले जाने के लिये और कान्स्टेबिल को दूर हटकर पहरा देने के लिये कह और मेरे चचा को कुरसी पर बैठाकर चले गए। थोड़ी देर तक तो हम दोनों फिर रोते कलपते रहे, इसके बाद मैं पहिले बोली और यों मैंने चचा से कहा,—"चाचा, अब क्या होगा?"

इस पर उन्होंने कहा,—"घबराओ, न बेटी! जब दीनदयाल ने तुम्हारी सहायता के लिये दीनानाथ को भेजा है, तब तुम निश्चय जानो कि अब तुम्हारा एक बाल भी बांका न होगा। मैंने तुम्हारे मुकद्दमें का सारा हाल भाई दयालसिंह और वारिस्टर दीनानाथ से सुन लिया है। वे लोग छाती ठोककर यह बात कहते हैं कि, "हम लोग हाईकोर्ट से दुलारी को साफ बचालेंगे।" इस लिये अब तुम नारायण पर भरोसा रखकर अपने चित्त से भय और खेद को दूर करो। आज वारिस्टर साहब मेरे साथ आने वाले थे, पर भाई दयालसिंह के साथ रसूलपुर थाने के कुछ कांस्टेबिलों का सच्चा बयान लेने के लिये वे वहां चले गए हैं और मुझे जेलर साहब के नाम का एक पत्र देकर तुमको ढाढ़स देने के लिये भेजा है। जैसी मुस्तैदी के साथ वे दोनों तुम्हारे मुकद्दमें की पैरवी कर रहे हैं। उससे तो यही बात पाई जाती है कि तुम जरूर छूट जाओगी।"

यह सुनकर मैंने कहा,—"अच्छा, मान लीजिए कि भगवान की दया और आपकी असीस से मैं छूट गई, पर छूटने पर आप मुझे अपनावेंगे?"

इस पर चचाजी यों कहने लगे,—"बेटी, दुलारी! बात यह है कि यहां निर्धन होने के कारण मैं तुम्हारे मुकद्दमें की पैरवी भी नहीं कर सका था और इसी लज्जा से तुम्हारे सामने आज तक आया भी नहीं था। पर जब भाईजी और वारिस्टर साहब की

जवानी तुम्हारे छुटकारे के मद्धे सब हाल सुना तो फिर तुम्हें देखे बिना मुझसे न रहा गया। यह बात तुम जानती हो कि मैं बड़ा गरीब ब्राह्मण हूं और समाज में धनवानों की तूती बोलती है। यदि आज मैं बड़ा आदमी होता तो तुम्हें अपनाने की हिम्मत कर सकता था, पर इस अवस्था में अपने इन उजड्ड, मूर्ख और जात्याभिमानी भाइयों पर मैं क्या दबाव डाल सकता हूं! मैंने अपने भरसक इस बातके लिये बहुत दौड़ धूप की कि जेल से छूटने पर मैं तुम्हें अपने घर लेजाऊं और अपने साले के लड़के के साथ तुम्हारा विवाह भी कर दूं, पर मैं क्या करूं? क्यों कि जात वाले पंच सरपंच अब तुमको जात में नहीं लेना चाहते और तुम्हें अपनाने पर मुझे भी जात बाहर कर देना चाहते हैं। ऐसी दशा में मैं अब क्या कर सकता हूं? मेरे साले का एक लड़का है, वह बीस बरस का है और अभी तक उसका ब्याह नहीं हुआ है। आज से आठ बरस पहिले मैंने उसके साथ तुम्हारा ब्याह करदेनेके लिये भाई विश्वनाथ प्रसाद तिवारी को बहुत समझाया था, पर वे राजी न हुए और मुझसे लड़ पड़े। तबसे मैं तुम्हारे यहां नहीं आता था, पर जब तुम्हारी विपत्ति का हाल सुना तो मुझसे न रहा गया और मैं आया। आया तो सही, पर सिवाय जगह जमीन के और कुछभी हाथ न लगा। फिरभी मैंने तुम्हारे पिता का श्राद्ध भली भांति कर दिया और जगह जमीन पर दखल हासिल किया। यह सब हुआ, पर हाय, मुझ अधम से तुम्हारा उद्धार न होसका, इसका मुझे मरते दम तक दुःख रहैगा।"

चचा की इतनी लम्बी चौड़ी बातें सुनकर मैंने कहा,—"तो फिर मेरा कहां ठौर ठिकाना होगा?"

इस पर वे कहने लगे,—"सुनो बेटी! बारिष्टर दीनानाथ मेरी जाति के ही हैं, पर विलायत हो आने के कारण जात वाले अब उन्हें नहीं बरतते। वे बड़े विद्वान्, धन कमाने वाले, नव युवक

और स्वरूपवान हैं। उनकी माता-पिता या स्त्री, कोई भी नहीं है और वे अकेले हैं। उनकी हार्दिक इच्छा तुम्हें अपनी अर्धांगिनी बनाने की है। मैंने उन्हें अपनी सम्पत्ति देदी है और तुमसे भी मेरा यही अनुरोध है कि भगवान् की दया से इस विपत्ति से उद्धार पाकर तुम दीनानाथ-समान गुणवान् व्यक्ति की भार्या बनो। इसमें कोई दूषण नहीं है और जाति के होने के साथ ही उनका गोत्र अलग है। यद्यपि वे विलायत से ही आए हैं और साहबी टोप लगाकर कचहरी जाते हैं, परन्तु इतने परभी उन्होंने ब्राह्मण-पने का आचार-विचार या शिखा-सूत्र नहीं त्यागा है। ऐसे अनुरक्त, सुशील और योग्य बर को पाकर तुम चिरसुखिनी होगी और ऐसा होने से मुझे भी सन्तोष होगा। यह तुम निश्चय जानो कि यह बिलायत का बखेड़ा बहुत दिनों तक न चल सकैगा और एक न एक दिन यह सारा झमेला मिट जायगा और तब विलायत आने जाने वाले जाति से बाहर नहीं रह सकेंगे। ऐसा ज़रूर होगा, पर इसमें ज़रा देर है। वह यों कि जब दो चार हजार हमारे जाति के भाई विलायत से आवेंगे, तब विलायती भाइयों का एक बहुत बड़ा समुदाय खड़ा होजायगा, और तब फिर जाति वाले उस बड़े धड़े में से किसे किसे छेंक छाक कर अलग करने की हिम्मत करेंगे?"

अपने चचाजी की इतनी लम्बी चौड़ी बातें सुनकर मैं उनकी सारी इच्छाओं और कर्तव्यों को समझगई, पर उस विषय में कुछ न कहकर मैंने उनसे यह पूछा,—"क्यों चचाजी! मैंने ऐसा क्या अपराध किया है कि जाति के भाई अब मुझे ग्रहण नहीं कर सकते?"

वे बोले,—"तुमने कुछ भी नहीं किया है और तुम्हारा कोई भी अपराध नहीं है। वरन् सच पूछो तो तुमारी सी सती और सुशीला कन्या जिस जाति में हो, उसके सन्मान के लिये सारे

संसार की जातियां सिर झुका सकती हैं,—पर बात यह है कि अविद्या, मूर्खता और कोरे घमण्ड के कारण हमारी जाति अभी ऐसी गिरी हुई दशा में है कि वह सच्ची सती साध्वी पतिव्रताओं का आदर करना जानती ही नहीं। जिस दिन मेरी जाति के लोग इस योग्य होंगे, उस दिन इनके सामने संसार की सभी जाति के लोग सिर झुकावेंगे?"

मैंने पूछा,—"तो आप मुझे सच—मुच त्यागते हैं?"

वे बोले,—"क्या करूं, बेटी! जी से तो मैं तुझे जीते दम तक कभी नहीं त्याग सकता, पर हत्यारे समाज के आगे मेरी एक नहीं चलने की।"

यह सुन और सारी लाज पर गाज डालकर मैंने फिर यों कहा,—"तो जिसे आप उचित समझें, उसे मेरा हाथ पकड़ा दें,,

वे बोले,—"नहीं, मैं जाहिरा में कुछ भी नहीं कर सकूंगा,,

मैं बोली,—"तो चुपचाप ही कर दीजिएगा,,

वे बोले,—"नहीं, चोरी की बात भी भला कभी छिपी रह सकती है! इस लिये तुझे स्वयम्बरा होना पड़ेगा,,

यह सुनकर मैं फिर फूट फूटकर रोने लगी और देर तक रोती रही। आखिर, आपही आप मैं चुप हुई और फिर इस विषय में चचा से कुछ भी कहना सुनना मैंने उचित नहीं समझा। वे देर तक चुपचाप बैठे रहे और फिर उठे और मुझे असीस देकर चले गए।

उनके जाने पर मैं बड़ी देर तक बैठी बैठी रोया की और जब सांझ होने पर पुन्नी और मुन्नी ने आकर मुझे बहुत कुछ समझाया, तब मैं कुछ स्वस्थ हुई। फिर भी उस दिन मेरा ऐसा जी दुखी हुआ था कि उस रात को मैंने पुन्नी या मुन्नी से कुछ भी बात चीत न की और दूध पीकर सोने का बहाना करके पड़ रही, पर आधी रात तक मुझे नींद न आई। हां, वे दोनों नौ बजते बजते सोगई थीं।

——०——

पच्चीसवां परिच्छेद।

दुःख—सुख।

" अचिन्तितानि दुःखानि,
यथैवायान्ति देहिनाम्।
सुखान्यपि तथा मन्ये,
दैवमत्रास्ति कारणम्॥ "

(व्यासः)

मैं यह कह आई हूं कि फागुन का महीना बीत रहा था। सो, देखते देखते जेल के अन्दर ही फागुन के साथही साथ होली भी बीत गई और चैत का महीना प्रारम्भ होगया! चचाभी मुझसे मिल-भेंट गए और मेरा भी संझा-सबेरा वैसे ही होने लगा, जैसे अब तक होता था। हां, यह बात अवश्य थी कि पहिले की अपेक्षा अब मैं बड़े आराम से रहती थी और सज्जन जेलर साहब के ढाढ़स से मेरा चित्त बहुतही स्वस्थ रहता था। बेचारी पुन्नी और मुन्नी भी सच्चे जी से मेरी टहल-चाकरी करतीं और उन दोनों की संगत से मेरे दिन-रात मजे में कटते थे। यह सब था, पर बारिस्टर साहब तो जो गए सो गए! वे चचा के साथ आने की बात कह गए थे, परन्तु मेरे ही मामले—मुकद्दमे की पैरवी के सबब वे तो नहीं आए, पर चाचा आए थे। इसके बाद फागुन बीत गया और चैत आधमका, पर अभी तक बारिस्टर साहब या जासूस साहब का कोई पता-ठिकाना नहीं! बस, इन्हीं बातों को सोच सोचकर मेरा जी रह रहकर बहुत ही घबरा उठता था, पर पुन्नी—मुन्नी और जेलर साहब के ढाढ़स देने से मैं अपनी उस उमड़ती हुई उदासी को किसी किसी तरह दबाती और भगवान का सुमरन किया करती थी, इसी भांति रो झींखकर या हँसी-खुशी मेरे दिन कटते जाते थे।

एक दिन दो पहर के समय, जब मैं पुन्नी—मुन्नी के साथ

अपनी कोठरी में बैठी हुई इधर उधर की गप-शप कर रही थी, तब जेलर साहब आए और पुन्नी-मुन्नी से बोले,—"पुन्नी और मुन्नी! लूकीलाल वकील तुम-दोनों से मिलने और यह खुश खबरी सुनाने आए हैं कि पहली अप्रैल को तुम दोनों इस जेल से छुट्टी पाओगी।

यह सुनकर पुन्नी और मुन्नी ने मेरी ओर इस ढंग से देखा कि उसका मतलब मैं समझ गई! अर्थात् वे दोनों उस कमीने लूकीलाल का नाम सुनकर बहुत ही डर गई थीं और उससे मुलाकात करने के लिये ज़रा भी राजी न थीं। बस, उन दोनों का दिली मतलब समझकर मैंने लूकीलाल का सारा किस्सा, जैसा कि पुन्नी ने मुझे सुनाया था, जेलर साहब को सुना दिया!

यह हाल सुनकर वे बहुत ही नाराज हुए और कहने लगे कि,—"ऐं! यह बात है! वह ऐसा कमीना और पाजी आदमी है! अच्छा, कुछ पर्वा नहीं। मैं उसकी सारी बदमाशी भुला दूंगा और उसे ऐसी सीख दूंगा कि वह उसे मरते दम तक न भूल सकेगा। सुनो, आज तो मैं उसे यह कहकर टाले देता हूं कि, इस वक्त मौका नहीं है, कल ठीक बारह बजे आना।" इसके बाद, इतना कहते कहते जेलर साहब ज़रा रुक गये और कुछ देर के बाद उन्होंने हम तीनों को उसी विषय में कुछ समझाया-बुझाया। उनकी बातें समझ कर हम सब बहुत प्रसन्न हुईं, और जेलर साहब चले गये। एक घण्टे के बाद वे हाथ में एक लिफाफा लिये हुए आए। एक सिपाही ने एक कुरसी लाकर मेरी कोठरी के आगे वाली दालान में डालदी और उस पर बैठ और लिफाफे के अन्दर से एक पत्र निकाल कर यों कहने लगे,—"दुलारी, लूकीलाल भुनभुना-उनभुना कर चला गया और कल दोपहर को आने की बात कह गया है। अच्छा, और सुनो! बारिष्टर दीनानाथ का यह प्राइवेट पत्र मुझे अभी मिला है। यह मेरे नाम है और अंगरेजी में है, इस लिये इसका मतलब मैं तुम्हें

समझाये देता हूं । सुनो,—"यहां से जाकर भाई दयालसिंह और बारिष्टर दीनानाथ रसूलपुर के थाने पर पहुंचे और बहुत कुछ कोशिश करने के बाद अबकी बेर वे दोनों दियानत हुसेन और रामदयाल चौकीदार के पेट से सच्ची बात निकाल सके। इस बार उन दोनों ने वे कुल बातें कबूल करलीं, जो तुमने अपने बयान में कही हैं। इसके बाद जासूस साहब और बारिष्टर साहब कानपुर पहुंचे, वहां जाने पर उन्हें मालूम हुआ कि कोतवाल साहब तो प्लेग की भेंट होगये, दरोगाजी एक रंडी के फंदे में पड़ने के सबब नौकरी से अलग किये गये और उनका साला अमीर पहरेदार भी नौकरी छोड़कर कहीं चल दिया। हां, रघुनाथसिंह और शिवराम तिवारी के बयानों से तुम्हारी बातें सच्च साबित होगईं। इसके बाद जासूसी महकमे के छोटे साहब ने जो यहां पर तुम्हारा बयान लेने आये थे, बहुत कुछ टीका-टिप्पणी लिखकर अपने अफसर बड़े साहब को दी और बड़े साहब ने उस तहरीर पर अपनी जोरदार राय लिखकर उसे हाईकोर्ट के जजों के पास भेज दिया। फकत इतना ही नहीं, बरन् इस बात का भी अंदाजा लग गया है कि फैसला ठीकही होगा। मुकदमा नम्बर पर आगया है और आशा है कि फैसला बहुत जल्द सुना दिया जायगा। सारा इन्तजाम कर देने के बाद भाई दयालसिंह तो अपने घर चले गये हैं और बारिष्टर दीनानाथ मुकदमे के फैसल होने तक इलाहाबाद से हटना मुनासिब नहीं समझते!" इतना लिखने के बाद बारिष्टर साहब तुम्हें यह इत्मीनान दिलाते हैं कि दुलारी को अब ज़रा भी डरना या घबराना न चाहिये!"

इतना कहने के बाद जेलर साहब ने उस पत्र को लिफाफे के अन्दर रखकर उठते उठते यों कहा,—"बेटी, दुलारी! यह तो मैं पहिले ही से कहता आरहा हूँ कि जब ऐसे जबर्दस्त जासूस और बारिष्टर तुम्हारे लिये उठ खड़े हुए हैं, तब तुमको जरा भी न

घबराना चाहिये। मैं तुम्हारे पिता की उम्र का और ब्राह्मण हूं, इस लिये तुम्हें आशीर्वाद देता हूं कि बहुत जल्द नारायण तुमको इस सांसत से छुटकारा देंगा।"

इतना कहते कहते सदाशय जेलर साहब ने अपनी आंखें पोछीं। हम तीनों, अर्थात् पुन्नो, मुन्नी और मैंने भी अपने अपने उमड़ते हुए आंसुओं के बेग को रोका और अपना जी दूसरी ओर ले जाने के लिये जेलर साहब से यों कहा,—"कल लूकीलाल का तमाशा मैं भी देख सकती हूं?"

"हां, हां जरूर।" यों कहकर जेलर साहब चले गए और उनके जाते ही पुन्नो और मुन्नी ने छेड़ खानी करनी शुरू करदी। पर आज सिवाय हँसने के मैंने उन दोनों से और कुछ न कहा।"



छब्बीसवां परिच्छेद ।

जैसे को तैसा ।

" खलानां कण्टकानां च,
द्विविधैव प्रतिक्रिया ।
उपानन्मुखभंगो वा,
दूरतो वा विसर्जनम् ॥ "

(सुभाषितम्)

यह रात बड़े मजे में कटी और मैंने पुन्नी और मुन्नी को यह बात भली भांति समझा दी कि काने-कलूटे लूकीलाल के मुंह में किस तरह लूका लगाना चाहिए ।

दूसरे दिन, बारह बजे के समय जेलर साहब हम तीनों को एक कोठरी में ले गए । वहां एक आलमारी की आड़ में मैं छिपकर खड़ी होगई और पुन्नी—मुन्नी ज़मीन में बैठ गईं । तब जेलर साहब ने लूकीलाल को बुलाकर उससे कहा,—"सिर्फ पन्द्रह मिनट का समय आपको दिया जाता है ।"

यों कहकर जेलर साहब ज़रा हटकर टहलने लगे और लूकीलाल ने मोछों पर ताव दे और बहुत ही बुरी तरह घूर कर उन दोनों बहिनों से यों कहा,—'कहो, बीबियो ! क्या हाल चाल है !,,

यह सुन मुन्नी तो कुछ न बोली, पर पुन्नी ने यों कहा,— " हाल भी अच्छा है, और चाल भी ठीक है ।,,

लूकी—" हूं ! कहो, अब क्या इरादा है ? पहिली अप्रैल को तुम दोनों छूट जाओगी । बोलो अबतो मेरी दिली ख्वाहिश तुम दोनों पूरी करोगी न ?,,

पुन्नी ने कहा,—" भला, यह तो बताओ कि तुमने मेरी कोठरी में घुसकर अपनी चांदी की डब्बी क्यों रखदी थी ?"

लूकी,—“ओहो! इस बातको तुम अब तक न समझीं? लाहौल बिला कूवत! अजी बी! अगर मैं उस डिब्बी को न रखता तो तुम दोनों के मुकद्दम इस जेल की कोठरी को कैसे ज़ीनत देते। मगर खैर, बिलफेल तो इतना ही हुआ है, लेकिन अगर अबकी बार भी जो तुम दोनों ने मेरी दिली आरजू न पूरी की तो देखना,—फौरन से पेश्तर तुम दोनों हिन्दुस्तान के बाहर किसी टापू की मिट्टी खोदती नज़र आओगी और अपनी फूटी किस्मत को रो रो कर वहीं पर अस्मत गंवाओगी, फिर पछताओगी और भरी जवानी में योंही मर मर जाओगी। बोलो, जल्द बोलो कि अब तुम दोनों का क्या इरादा है?”

इतना सुनकर मुन्नी रिस में भरकर यों बोली,—“सुन बे कमीने कहीं के! उस बार तो मैंने तेरा सिरही तोड़ा था पर अबकी बेर जो तूने ज़रा भी पाजीपन किया तो तेरी इस पकौड़ी सी नाक को मैं दांतों से काट लूंगी और तेरे मुंह पर पांच पैजार मारकर अखबारों में यों छपवा दूंगी कि मैंने लूकी के मुंह में लूका लगा दिया। क्यों, अभी आया तेरी समझ के अन्दर या नहीं। चल हट दूर हो और जा यहां से अपना मुंह काला कर। पाजी! बेहया!! कमीना!!!”

इतना सुनते ही लूकीलाल भभक उठा और ताव पेंच खाकर यों कहने लगा,—“अच्छा, हरामजादियों! तुम दोनों ज़रा जेल से तो निकलो। फिर देखना कि किस बेदर्दी के साथ तुम्हारी अस्मत के दामन तार तार किये जाते हैं और किस तरीके से तुम फीजी टापू को रवाना की जाती हो।”

“जा, जा, दूर हो, यहां से, दोज़खी कुत्ते!” यों कहकर मुन्नी ने उसके चेहरे पर थूक दिया। बस, फिर तो लूकीलाल ऐसा झल्लाया कि उसने पुन्नी और मुन्नी को दो चार घूंसे रसीद कर दिये। इस पर वे दोनों बड़े ज़ोर से चिल्ला उठीं और जेलर साहब ने जेल के सिपाहियों को बुलाकर लूकीलाल को हथकड़ी भरदी और उसे मजिस्ट्रेट के इजलास में भेजदिया।

इसके जाने पर मैं आड़ में से निकल आई और पारी पारी से पुन्नी और मुन्नी को गले लगाकर बोली,—"शाबाश! खूब काम किया तुम दोनों ने! अब बच्चाजी को छठी के दूध अच्छी तरह याद आजायंगे!"

इसके बाद उन दोनों के साथ मैं अपनी कोठरी में आगई और जेलर साहब यह कहकर तुरन्त चले गये कि,—"मुझे अभी मजिस्ट्रेट के इजलास में जाना है। अब लूकीलाल अगर जेल से बच जाय तो भी जुर्माने से कभी नहीं बच सकता!"

निदान, उस दिन तो लूकीलाल जमानत पर छूटा। दूसरे दिन पुन्नी और मुन्नी का जंट साहब के रूबरू इज़हार हुआ, जिसमें उन दोनों ने लूकीलाल की सारी शैतानी का हाल कह सुनाया। होती तो उस मुए की कड़ी सज़ा, पर बहुत से वकील-मुख्तारों ने मिलकर हाकिम की इतनी खुशामद की कि कई दिनों के बाद लूकीलाल सिर्फ दो सौ रुपया जुर्माने देकर छुटकारा पागया। उन रुपयों में से पचास रुपया पुन्नी और मुन्नी को दिये गये।"

यहां पर इस कहानी के पढ़ने वालों को यह बात समझ लेनी चाहिये कि जो शख्श मुझे मजिस्ट्रेट के इजलास में बेतरह घूर रहा था और जिसने उस इजलास से निकलने के समय मुझ पर अवाज़ा कसा था, वह लूकीलाल ही था, क्योंकि उसकी सूरत देख और आवाज सुनकर यह बात मैंने भली भांति समझ लीथी।"

लूकीलाल का झमेला तय होगया था, पर बेचारी पुन्नी और मुन्नी बहुत ही डरी जाती थीं कि जेल से छूटने पर लूकीलाल के हाथों से कैसे रिहाई पाई जा सकेगी? मैं उन दोनों को बहुत ढाढ़स देती थी और बार बार समझाती थी कि,—"परमेश्वर पर भरोसा रक्खो, क्यों कि वही परमात्मा सबलों से दुर्बलों की रक्षा करता है।

सत्ताईसवां परिच्छेद।

छुटकारा।

"निन्दतु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदम् न धीराः॥"

(भर्त्तृहरिः)

इसी भांति और भी कई दिन बीत गए थे। यहां तक कि आधे चैत के साथ ही साथ यह अभागा, खासकर मेरे लिये, साल भी बीत गया था और नया संवत् प्रारम्भ होगया था। इस नए बरस के भी चार नवरात्र बीत गए थे और आज मार्च के महीने की इकतीसवीं तारीख थी।

कल पुन्नी और मुन्नी इस जेल से बिदा होंगी, इस बात की मुझे बड़ी खुशी थी, पर उन दोनों को इससे आनन्द नहीं, वरन बहुत ही दुःख होरहा था। क्यों कि एक तो वे दोनों मुझे छोड़ना नहीं चाहती थीं, दूसरे दुष्ट लूकीलाल का डर उनकी जान लिये डालता था। यद्यपि मैं उन दोनों को बहुत कुछ समझाती-बुझाती थी, तौ भी वे रो रोकर अपनी जान के साथ ही साथ मेरे प्राण को भी हैरान-परेशान किए डालती थीं।

यों ही हम सब बैठी हुई रो-धो रही थीं कि इतने ही में जेलर साहब ने आकर उन दोनों से कहा,—"तुम्हारे मालिक मकान तुमसे मिलने आए हैं। अगर तुम उनसे मिलना चाहो तो मिल सकती हो।"

यह सुनकर उन दोनों के कुछ कहने के पहिले ही मैंने जेलर साहब से यों कहा,—"क्या आप कृपाकर उनको यहीं बुला सकते

हैं ? क्यों कि मैं यह चाहती हूं कि ये दोनों अपने मकान के मालिक से मेरे सामने ही बात चीत करें। „

यह सुनकर जेलर साहब ने कहा,—" अच्छी बात है, मैं उन्हें यहीं भेज देता हूं। „

यों कहकर जेलर साहब चले गए और थोड़ी ही देर में एक सिपाही के साथ एक बूढ़े ब्राह्मण देवता आए। उन्हें देखकर पुन्नी और मुन्नी ने जमीन में माथा टेक कर पालागन किया, मैंने भी प्रणाम किया और तब असीस देकर उन्होंने यों कहना प्रारम्भ किया,—" बेटी पुन्नी और मुन्नी ! अब तक तो हम लोग यही समझे थे कि तुम दोनों या तुममें से किसी एक ने उस दुष्ट लूकीलाल की डिबिया चुराई होगी ! पर यहां आकर और तुम दोनों से टंटा करके उसने जो जुर्माना दिया, उसकी बात सारे शहर में खूब तेज़ी के साथ फैल गई है। अब सभी लोग उस पर थूकते और बे कसूर समझकर हजार मुंह से तुम दोनों की बड़ाई करते हैं। कल पहिली अप्रैल है और मैंने अभी जेलर साहब से यह बात सुनी है कि कल सुबह सात बजे तुम दोनों छोड़ दी जाओगी। यह बड़ी खुशी की बात हुई कि मैं ठीक समय पर यहां आया, इस लिये अब कोई चिन्ता की बात नहीं। कल बड़े तड़के मैं खुद और महल्ले के कई आदमी आवेंगे और तुम दोनों को घर लिवा ले जायंगे। हम लोगों ने तुम दोनों के लिये एक बहुत अच्छी नौकरी भी ठीक करली है और इस बात का भी पूरा पूरा प्रबन्ध कर लिया है कि अगर अबकी बार लूकीलाल तुम दोनों या तुममें से किसी को भी छेड़ेगा तो उसकी नाक काट ली जायगी। तुम दोनों मुलई-महाराज को तो जानती ही हो कि वे महल्ले में कैसे दबंग आदमी हैं। सो तुम्हारा हाल सुनकर वे लूकी पर बहुत ही बिगड़े हैं और उन्हों ने लूकी के घर जाकर उससे यह बात जोर देकर कहदी है कि, अगर अब तू पुन्नी-मुन्नी को ज़रा भी छेड़ेगा तो भरे बाज़ार

तुझपर जूते पड़ेंगे और तेरी पकौड़ा सी नाक साफ करदी जायगी। इस लिये अब तुम दोनों को उससे तनिक भी न डरना चाहिये। अच्छा, अब मैं जाता हूं। अब नारायण का सुमरन करके आज का दिन तुम दोनों और काट दो।"

यों कहकर जब वे चलने लगे तो हम सबों ने फिर उन्हें प्रणाम किया और वे उसी सिपाही के साथ चले गए।

यद्यपि उनके आने और उनकी बातें सुनने से पुन्नी और मुन्नी के लिये मैं बिल्कुल बे फिक्र होगई थी, पर उन दोनों का रोते रोते बुरा हाल होरहा था और वे मुझे छोड़कर घर नहीं जाना चाहती थीं। पर भला यह कैसे हो सकता था! क्योंकि मियाद पूरी होने पर भला कोई कैदी एक दिनभी जेल के अन्दर रह सकता है?

योंही रोते धोते तीसरे पहर के चार बजगये। ठीक उसी समय एक कांस्टेबिल आया और यह कहकर पुन्नी और मुन्नी को अपने साथ लिवा ले गया कि,—"चलो, तुम दोनों को जेलर-साहब बुला रहे हैं।"

उन दोनों के जाने पर मैंने उठकर हाथ मुंह धोकर थोड़ा सा पानी पीया। यद्यपि पुन्नी और मुन्नी के लिये मैं निश्चिन्त होगई थी और मुझे इस बात का पूरा भरोसा था कि अब उन दोनों पर लूकीलाल का जोर-जुल्म न चलैगा, पर फिरभी उनका साथ छुटने से जो कुछ दुःख मुझे होने वाला था, उसका अंदाज़ा करके मेरा जी बैठा जाता था। क्योंकि इस बात की तो मुझे कुछ खबर थी ही नहीं कि मेरा क्या होगा, या कितने दिनों तक मुझे इसी तरह जेल में सड़ना होगा!

खैर, मैं इसी तरह की बातों को सोच रही थी कि इतने ही में पुन्नी और मुन्नी आकर मेरे पैरों पर गिर पड़ीं और फिर उठ और हँसकर पुन्नी यों कहने लगी,—"लीजिये, सरकार! भगवान

ने हज़ार कानों से हम लोगों की बिनती सुनली । अब हम दोनों बहिनें जीतेजी आपके इन चरणों को छोड़कर कहीं नहीं जांयगी।"

यह सुन और चकपका कर मैंने पारी पारी से उन दोनों की ओर देखा और पुन्नी से यों पूछा,—"क्यों, क्या बात है? जेलर साहब ने तुम दोनों को क्यों बुलाया था!"

यह सुन कर वे दोनों बहिनें खूब खिल खिला कर हंस पड़ीं और पुन्नी ने कहा,—"सुनिये,—बड़ी खुशी की बात है। अब हम दोनों आपका चरन छोड़कर कहीं नहीं जा सकतीं।"

मैंने कहा'—"पहेली न बुझाओ और साफ साफ कहो कि बात क्या है!"

पुन्नी बोली,—"जी साफ और सच बात तो तभी कही जायगी, जब आप हम दोनों को अपने चरनों में रखने की प्रतिज्ञा करेंगी।"

यह सुनकर मैं हंस पड़ी और कहने लगी,—"वाह, मेरे चरण मानों घर द्वार ठहरे।"

पुन्नी,—"अब टाल-मटूल रहने दीजिये और झटपट यह प्रतिज्ञा कीजिये कि हम दोनों को अपने चरनों की छाया से अलग तो न करियेगा!"

यह सुनकर कुछ देर तक मैं कुछ सोचती रही और फिर बोली,—"अच्छी बात है! अगर भगवान मुझे इस कैद से छुट्टी देंगे तो मैं तुम दोनों को खुद अपने पास से अलग न करूंगी।"

यह सुनते ही वे दोनों एक साथ कह उठीं,—"भगवान् को कोटि कोटि धन्यवाद है कि उस परमात्मा ने बेकसूर जानकर आपको इस सांसत से छुड़ा दिया।"

"एं! क्या यह सच है!!!" इतना कहते कहते मैं चक्कर खाकर वहीं पर लुढ़क गई।

जब मुझे चेत हुआ तो मैंने क्या देखा कि,—" मेरा सिर

पुन्नी की गोद में है, मुन्नी पंखा झल रही है और जेलर साहब कोठरी के बाहर खड़े हुए मेरे चेहरे की तरफ गौर से देख रहे हैं।

यह देखकर मैं उठ बैठी और जब मेरा जी ठिकाने होगया, तब जेलर साहब ने मुझ से कहा,—"बेटी दुलारी! अब तुम्हारा जी कैसा है?"

मैंने कहा,—"अब मैं अच्छी हूं। कहिए, क्या बात है?"

जेलर साहब ने कहा,—"बड़ी खुशी की बात है। क्या अब तुम उस आनन्द समाचार के सुनने के लिये तैयार हो?"

मैंने कहा,—"हां, अब मेरा जी ठिकाने होगया है, इसलिये कृपा कर कहिये कि क्या बात है!"

जेलर साहब ने कहा,—"मैंने कचहरी से आकर पुन्नी और मुन्नी को इसीलिये बुलाया था कि इन दोनों के ज़रिये से तुम्हें खुश खबरी सुनाऊं। पर तुमतो ज़रा सा ही हाल सुनते सुनते बेसुध हो पड़ीं थीं! खैर, अब तुम खुलासे तौर से यह सुनो कि हाईकोर्ट ने तुमको बिल्कुल बेकसूर कहकर छोड़ दिया। आज दो बजे दिन को जज और मजिस्ट्रेट के नाम इसी आशय का तार आगया और जज ने मजिस्ट्रेट को तुम्हें छोड़ देने को लिख भेजा। मजिस्ट्रेट ने मुझे बुलाकर यह हुकुम दिया है कि,—"कल सुबह सात बजे दुलारी छोड़दी जाय।" केवल इतना ही नहीं, वहीं, कचहरी में ही मुझे बारिष्टर दीनानाथ का तार मिला। इस तार में वे लिखते हैं कि,—"दुलारी बेकसूर साबित होकर छुटकारा पागई। कल पहिली अप्रैल को सुबह सात बजे वह जेल से छोड़दी जायगी। आप इस बात की उसे इत्तला दे दें। मैं अपने मित्र और भाई दयालसिंह के पुत्र भाई निहालसिंह और उनकी स्त्री श्रीमती सुकुमारी देवी के साथ पौने ग्यारह बजे रात की पैसिंजर गाड़ी से रवाना होकर सुबह साढ़े पांच बजे के बाद कानपुर पहुंचूंगा और सात बजने के पहिले ही जेल पर आजाऊंगा। मेरे आने के पहिले

आप दुलारी को अकेली न छोड़ दीजियेगा।" बस, अब तुम परमात्मा को धन्यवाद दो।"

इतना कहकर जेलर साहब चले गये और मैंने हाथ जोड़ तथा सीस नवाकर भगवान की मनही मन स्तुति की। इसके बाद मैंने उठकर पुन्नी और मुन्नी को गले लगाया और कहा,—"अब तुम दोनों मेरे जीवन की साथिन हुई। परमात्मा की महिमा का कौन पार पा सकता है कि उसने तुम्हारेही छुटकारे के दिन मुझे भी इस जेल—नहीं नहीं, फांसी से भी छुट्टी दी।"

इतना कहते कहते मेरी आंखों से आंसू चल रहे थे, जिन्हें पुन्नी और मुन्नी ने पोंछा और उनके आंसुओं को मैंने। फिर हम सबों ने ज़रूरी कामों से निपट और नहा धोकर कुछ देर तक भगवान का भजन गाया। फिर पुन्नी और मुन्नी खाने चली गईं और मैंने भी सदा की भांति दूध पीया।

ज़ब पुन्नी और मुन्नी आगईं, तब उन दोनों के साथ मैंने धीरे धीरे भगवान का भजन गाना प्रारम्भ किया। क्योंकि जेल की यह आखिरी रात थी, इसलिये जागरण कर और भजन गाकर इसे बिताना हम लोगों ने ठीक समझा।

आज मेरी कोठरी का ताला खोल दिया गया था और बेचारा पहरे वाला भी नहीं दिखाई देता था, शायद वह कहीं दूर पर रह कर पहरा देता होगा! इसलिये निराले में हम सबों को जागरण करने और भजन गाने का खूबही मौका मिला।

बड़े तड़के, पांच बजे के पहिले ही, हम तीनों नहाने धोने आदि से छुट्टी पाकर अपने छुटकारे के समय का आसरा देखने लग गई थीं।



अट्ठाईसवां परिच्छेद ।

बिवाह ।

" निशा शशांकं शिवया गिरीशं,
श्रिया हरिं योजयतः प्रीतिः ।
विधेरपि स्वारसिकप्रयासः,
परस्परं योग्य समागमाय ॥ "

(नैषध चरिते)

पांच बजे एक कांस्टेबिल आकर हम लोगों के वे कपड़े दे गया, जिन्हें पहने हुई हम लोग जेल के अन्दर आई थीं। बस, मैंने अपने कपड़े पहिर ओढ़ लिये, और पुन्नी—मुन्नी ने अपने अपने। इसके बाद वह सिपाही हम लोगों के उतारे हुए कपड़े लेकर चला गया और उसके जाने के थोड़ी ही देर बाद जेलर साहब आए।

उन्हें हम सभों ने पालागन किया और उन्होंने असीस देकर पुन्नी के हाथ में पचास रुपये देते हुए यों कहा,—" लो, ये तुम्हारी सचाई के इनाम हैं। "

पाठक. यह बात भली भांति समझ गए होंगे कि ये रुपये हकीमाल के जुर्माने में से पुन्नी—मुन्नी को अदालत से मिले थे।

अस्तु, जेलर साहब तो रुपये देकर चले गए, पर उन रुपयों में से दस रुपये निकाल कर बाकी के रुपये पुन्नी ने मेरे पैरों पर रख दिये और यों कहा,—" लीजिए, इन्हें अपने पास जमा कर रखिये। जब काम पड़ेगा, तब ले लूंगी। "

पुन्नी के रंग ढंग देख और मुस्कुराकर मैंने उन रुपयों को उठाकर अपने आंचल के छोर में बांध लिया और कुछ कहना चाहा; पर कह न सकी; क्यों कि मेरे बराबर की दो लड़कियों के साथ एक बंगालिन स्त्री वहां पर आई; उसके पीछे पीछे जेलर साहब भी थे।

सो, जेलर साहब ने ज़रा आगे बढ़कर मुझसे यों कहा,—"दुलारी ! यह मेरी स्त्री और ये दोनों कन्याएँ हैं । ये सब तुमसे मिलने आई हैं । "

यह सुन और उठकर मैंने जेलर साहब की स्त्री के चरण छूए और उनकी दोनों लड़कियों से गले गले मिली ।

इसके बाद जेलर साहब की स्त्री ने मेरी गोदी में पांच फल डाल दिए और तीनों मां बेटियों ने मेरे चरन की धूल अपने अपने मांथे में लगा कर यों कहा कि,—"जाओ, सुशीले ! इस नरकालय से निकल कर सुरालय में विचरण करो । "

"लाओ, मां ! मुझ पतित को भी अपनी पद धूलि देकर कृतार्थ करो । „

यों कहकर मेरे पिता के समान धर्मात्मा बंगाली जेलर साहब ने भी मेरे पैर की धूल अपने मस्तक पर लगाई ।

इसके बाद वे सब आंखें पोंछती हुई चली गईं, जेलर साहब भी चले गए और तब मैंने अपनी आंखें पोंछ कर उन फलों को भी रुपयों के साथ बांध लिया ।

इतने ही में छः बजे और जेलर साहब ने आकर मुझसे कहा, "दुलारी ! भगवान का नाम लेकर उठो और चलो । तुमको लेने के लिये बारिस्टर दीनानाथ, और अपनी पत्नी के साथ भाई निहालसिंह आगए हैं । „

यह सुनते ही मैं मंगलमय भगवान् का पवित्र नाम लेकर उठी, पुन्नी—मुन्नी भी उठ खड़ी हुई और हम तीनों जेलर साहब के पीछे पीछे चलीं ।

जेल से बाहर निकलते ही जेलर साहब मुझे एक मोटर गाड़ी के पास लेगए और बोले,——"दुलारी ! तुम इस गाड़ी के अंदर जाओ । भीतर भाई निहालसिंह की स्त्री बैठी हुई हैं । „

यों कह और गाड़ी का दर्वाज़ा खोलकर जेलर साहब ने

मुझे सवार करा दिया और फिर दरवाज़ा बंद कर दिया। बेचारी पुन्नी मुन्नी बाहर ही रह गई।

भीतर जाते ही एक स्वर्गसुन्दरी किशोरी ने मुझे गले लगाकर अपनी बगल में बैठा लिया। पाठक यह जानही चुके हैं कि यह भाई निहालसिंह की स्त्री सुकुमारी देवी थीं। उनके सुन्दर और हास्यमय मुखड़े की ओर देखते ही मेरी आंखें चौंधिया गई! अरे क्या इससे भी बढ़कर सौन्दर्य सुरपुर में होता होगा! मेरा हृदय देख और मेरे मन का भाव समझकर सुकुमारी ने हंसकर यों कहा,–"मेरी प्यारी बहिन! इस तरह आंखें फाड़ फाड़ कर मेरे मुखड़े की ओर क्यों देख रही हो? क्यों मैं तुमसे ज्यादे सुन्दर हूं?,,

मैंने कहा,–"आपकी अपार सुन्दरता ने मेरी आंखों को अपनी ओर खैंच लिया है।,,

यह सुन और खिलखिला कर सुकुमारी ने कहा,–"ओहो! यह बात है। तो बहिन! तुम क्या कम हो! तुम्हारी इस लामिसाल खूबसूरती के लिये लाख खून माफ हैं! और तुम तो तुम–ज़रा उधर तो देखो–तुम्हारी ये दोनों खवासिनें क्या पंजाबिनों से कुछ कम हैं? खुलगए मेरे पति के दोस्त के खवास चुन्नी–खुन्नी के भाग!!!,,

मैंने "चुन्नी–खुन्नी,, नाम सुन अचरज के साथ सुकुमारी की ओर देखा और पूछा,–"चुन्नी–खुन्नी कौन?,,

सुकुमारी ने कहा–"तुम्हारे आशिक बारिस्टर साहब के दोनों खवास! देखो वे दोनों कहार उस दूसरी मोटर के दरवाजे के पास खड़े हुए हैं?,,

यह सुनकर मैंने शीशे की टट्टी में से देखा. पहिले मेरी नज़र बारिस्टर साहब पर पड़ी, उसके बाद मैंने निहालसिंह को देखा! आहा! सुकुमारी ने अपने योग्य ही पति पाया था! उन्हीं के पास दो नौ जवान और सुन्दर नौकर खड़े हुए थे। उन्हें दिखलाकर सुकुमारी ने मुझे यह बात बतलादी कि उन दोनों में से कौन चुन्नी है

और कौन खुन्नी ! यह देख मैंने मनही मन यह सोचा कि बाहरी पुन्नी और मुन्नी ! तुम दोनों के भी खूब ही नसीबे जागे ?

इसके बाद मैंने क्या देखा कि एक तरफ आठ दस आदमी खड़े हैं और उन्हीं के पास खड़ी हुई पुन्नी कुछ बात चीत कर रही है। मैंने उन आदमियों में पुन्नी के मकान मालिक को देखकर पहचाना और देखा कि पुन्नी ने उन (मालिक मकान) के हाथ में कुछ रुपये दिये और दोनों बहिनों ने उनके चरन छूकर मेरी मोटर की ओर पैर बढ़ाया, उस समय मैंने यह बात अच्छी तरह देखली कि वे दोनों कहार पुन्नी और मुन्नी को नज़र गड़ा कर देख रहे हैं !

सुकुमारी ने कहा-"बारिष्टर साहब को पुन्नी-मुन्नी का सारा हाल मालूम हो चुका है । यहां तक कि लूकीलाल के मुकद्दमे का हाल भी वे जान गये हैं और यह भी वे सुन चुके हैं कि नेक चलन पुन्नी और मुन्नी ने जन्म भर तुम्हारी सरन में रहने की प्रतिज्ञा की है। यह सब हाल जेलर साहब से जानकर वारिष्टर साहब ने यह तय किया है कि दोनों भाइयों में बड़े चुन्नी के साथ पुन्नी का और छोटे खुन्नी के साथ मुन्नी का ब्याह कर दिया जायगा।,,

इतने ही में चुन्नी ने आकर मोटरगाड़ी का दरवाज़ा खोल दिया और पुन्नी मुन्नी अन्दर आकर सामने की बैठक पर बैठ गई। उनके बैठने पर चुन्नी ने बाहर से पूछा-"सरकार ने पूछा है कि डाक गाड़ी में अभी ढाई-तीन घंटे की देर है, इसलिये अगर गंगा नहाने की इच्छा हो तो सरसैयाघाट चला जाय।,,

यह सुनकर मैंने पोटली में से निकाल कर दस रुपये पुन्नी के हाथ पर धरे और कहा कि-"इसे चुन्नी को देकर कहदो कि दो रुपए के पैसे और आठ रुपये की मिठाई लेली जाय और गंगाजी चला जाय।,,

यह सुनकर पुन्नी ने रुपए चुन्नी के हाथ में दे दिये और संदेसा कह दिया। इसके बाद वहां से दोनों मोटरें रवाने हुई, आगे मेरी मोटर थी और उसके पीछे वाली पर वारिष्टर साहब और भाई निहालसिंह थे।

मैंने पुन्नी से कहा–"लो, तुम्हारे दस रुपये मैंने खर्च डाले।"

यह सुन पुन्नी और मुन्नी एक साथ बोल उठीं,–"ऐं! सरकार! यह क्या बात है! वह सुदामा का तंदुल आपके चरणों में चढ़ा दिया गया है।"

इस पर सुकुमारी ने मुस्कुराकर कहा–"तो वह फल फूल कर कई गुना तुम दोनों के पास पहुंच जायगा।"

मैंने पुन्नी से पूछा–"तुमने क्या वे दस रुपये अपने मकान मालिक को दे दिये?"

पुन्नी ने कहा,–"जी हां! उनका कई महीने का भाड़ा भी तो बाकी है, उन से सरकार ने कह दिया है कि पुन्नी मुन्नी अब से मेरे घर प्रयागराज में रहेंगी और कुछ दिनों पीछे कानपुर आकर आपका मकान खाली कर जायंगी।"

सुकुमारी ने कहा–"यानी शादी होजाने के बाद?"

अस्तु; बातकी बात में हम सब सरसैयाघाट पर पहुंच गईं। कानपुर में यह बहुत ही अच्छी रीति है कि स्त्रियों के नहाने का घाट अलग है! अहा! बहुत दिनों पर गंगा महारानी के दर्शन पाकर मेरे रोम रोम प्रसन्न होगए, मैंने भक्तिभाव से भागीरथी को प्रणाम किया और पहिले सिरपर जल डाल कर तब भीतर पैर रक्खा। इतने ही में चुन्नी एक कपड़ोंकी गठरी पैले और मिठाइयोंका टोकरा देगयाथा, साथ ही वे दस रुपए भी फेर गया था, जो मैंने दिये थे।

खैर, मैंने कई गोते लगाए, पिता–माता को जलाञ्जुलि दी, सूर्यभगवान को अर्घ्य दिया. स्वयं तीन आचमन किया और जेलर

साहब की स्त्री के दिये हुए फल गंगामाता की गोद में दिए। कुछ मिठाई पैसे भी चढ़ाए।

इसके बाद जल के बाहर निकलने पर सुकुमारी बीबी ने मुझे बहुत बढ़िया रेशमी रक्ताम्बर पहिराया, हरे कमख्वाब की जाकेट पहराई और ऊपर से एक सुनहले काम की गुलाबी सिल्क चादर ओढ़ादी साथही जबर्दस्ती मेरे कानों में आयरिंग ' गले में सिकडी ' हाथोंमें कड़े और पैरों में छड़े डाल दिए।

इतने ही में क्या देखती हूं कि मेरे पुराने कपडे, अर्थात् धोती, चादर और सलूका, कंगलों को बांट दिए गए। सुकुमारी के कहने से पुन्नी—मुन्नी ने भी अपनी पुरानी धोती—चादर भिखमंगों को देकर नई धोती—चादर पहिर—ओढ़ली। इसके बाद पुन्नी ने क्या मजा किया कि वे दस रुपए, जो फिर कर आए थे, मुझ पर तीन बार उतार कर कंगलों के आगे फेंक दिए।

अस्तु, फिर मैंने पैसों और मिठाइयों को भिखारियों और कंगलों में बंटवा दिया और इस काम से छुट्टी पाकर गाड़ियों पर सवार होकर स्टेशन का रास्ता लिया।

स्टेशन पर पहुंचते ही डांक गाड़ी आगई और सुकुमारी तथा पुन्नी मुन्नी के साथ मैं फर्स्ट क्लास के एक डब्बे में सवार हुई। उसके बगल वाले डब्बे में अपने दोस्त और दोनों नौकरों के साथ बारिस्टर साहब सवार हुए। थोड़ी देर तक गाड़ी ठहरी रही, इसके बाद सीटी देकर चल खड़ी हुई। मैंने मनही मन भगवान् का सुमरन कर उनके पुनीत पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम किया।

रास्ते भर मुझे सुकुमारी ने भरपेट छेड़ा, पर उन सब बातों को मैं यहां पर लिखना मुनासिब नहीं समझती।

एक बजे के पहिले ही हम सब प्रयागराज पहुंचीं। मैंने सुकुमारी से यह बात पहिले ही कह दी थी कि, 'मैं प्रयाग पहुंचते ही पहिले त्रिवेणी में स्नान करूंगी।' बस, मेरी बात उसने पुन्नी के जरिए बारिस्टर साहब से कहला दी। सो, स्टेशन से बाहर होतेही हम सब फिर मोटर पर सवार होकर बांध पर पहुंची और वहां से किले के नीचे आ और नाव पर सवार होकर त्रिवेणी संगम पर गई। वहां सभों ने स्नान किया और लौट कर जब सब कोई मोटर पर सवार हुए तो बारिस्टर साहब ने पुन्नी से यों कहलाया कि "सारा दिन बीत चला, अब कुछ जल—पान करके तब डेरे पर चला जाय।"

सचमुच, अब तक सबके सब बेचारे भूखे प्यासे थे, पर मैं क्या कर सकती थी। क्यों कि उस दिन मैंने निर्जल व्रत करने का निश्चय कर लिया था। यही बात मैंने सुकुमारी बीबी को समझा दी और उन्होंने वही बात बारिस्टर साहब से कहलादी। इस पर मुझसे बहुत कुछ कहा गया, पर जब मैंने अपना निश्चय न तोड़ा तो मुझे और पुन्नी—मुन्नी को छोड़कर और सभों ने कुछ फल—फल खाए और तब मोटरें रवाने हुईं।

वहां से चलकर मैं सुकुमारी बीबी के साथ भाई निहालसिंह की कोठी में उतरी, पुन्नी—मुन्नी भी मेरे साथ थीं। और बारिस्टर साहब अपने दोस्त से हाथ मिला और एक नज़र मुझ पर डाल कर चले गए। अब मुझे, जब तक ब्याह न हो, सुकुमारी बीबी के ही पास रहना होगा।

—:;※:(:—

अब इसके बाद क्या हुआ ? क्या यह भी मुझे लिखना होगा ? अस्तु, सुनिए—— बैसाख सुदी पंचमी को मेरा और दशमी को पुन्नी तथा मुन्नी का विवाह होगया और मैं सुकुमारी बीबी को रुलाकर अपने प्राणपति की कोठी में आगई। यहां पर इतना और भी समझ लेना चाहिए कि मेरे चचा ने ठीक समय पर आकर मेरा सम्प्रदान कर दिया था।

॥ इति श्री ॥

इस पुस्तक के १७ फार्म श्री सुदर्शन प्रेस वृन्दावन में छपे थे और १८ से अन्त तक के फार्म और रंगीन टाइटिल पेज बम्बई भूषण प्रेस मथुरा में छपे हैं।



राजकुमारी।

सचित्र-सामाजिक-उपन्यास। मूल्य एक रुपया।

यह उपन्यास भी अपने ढंग का निराला ही है। अब दूसरी बार बड़ी उत्तमता से छापा गया है और इसमें "राजकुमारी" का रंगीन चित्र तो ऐसा दिया गया है कि वैसा सुन्दर चित्र बाज़ार में चार आने में भी न मिलेगा। इस उपन्यास की प्रेम लीलाएं और ऐयारियां बड़ी ही अनोखी हैं। इस उपन्यास के पढ़ने वाले इसमें भाग्य का अद्भुत खेल देखेंगे। विद्वान लोग भाग्य को मनुष्य के जीवन का एक प्रधान अंग मानते हैं। यह बात अक्षर अक्षर सत्य है। क्योंकि संसार में प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन काल में किसी न किसी समय भाग्य के चक्र में अवश्य ही पड़ना पड़ता है। बस, इस उपन्यास में दैव, दिष्ट, भागधेय, भाग्य, नियति, विधि, या किस्मत,—जो कुछ कहिए, वे सब मूर्ति धारण करके अपना अद्भुत और भयानक कौतुक दिखलाने लग जाते हैं। इस उपन्यास के पढ़ने से आपको यह बात भली भांति विदित हो जायगी कि भाग्य के फेर में पड़कर मनुष्य को कहां तक भले और बुरे काम करने पड़ते हैं, तथा भले आदमियों को भी इसके चक्र में फंसकर किस भांति दुःख के दिन काटने पड़ते हैं। जो लोग भाग्य को कोई चीज़ ही नहीं समझते वे भी एक न एक दिन इसके चक्राबू में पड़कर सारी चौकड़ी भूल जाते हैं। ऐसे महा-महिमान्वित "भाग्य" में छोटे को बड़ा और बड़े को छोटा कर देने की कैसी अद्भुत और अलौकिक शक्ति है, यह इस उपन्यास के पढ़ने से भली भांति मालूम होजायगा। तब पाठक यह बात मज़े में समझ जायंगे, कि इस उपन्यास में कहेगर-राजा हीराचन्द्र, मानिक, सुकुमारी, ब्रह्मचारी रामानन्द, दीवान राम लोचन, जमना, हुसैनी, सिद्ध तपस्वी इत्यादि पात्रों को उनके भाग्य ने क्या क्या तमाशे दिखलाए, यह बात इस उपन्यास में पढ़कर पाठक चकित हो जायंगे। इसमें धूर्त्तता, बदमाशी, नमकहरामी, जालसाज़ी और विचित्र स्वर्गीय प्रेम तथा गुप्त रहस्य की अद्भुत लीलाएं इस ढंग से लिखी गई हैं कि पढ़ने वालों को इसके पढ़ने से एक अपूर्व और अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होगी।

❀ मल्लिकादेवी वा वंगसरोजिनी ❀

ऐतिहासिक उपन्यास....मूल्य सवा रुपया।

इस उपन्यास में बंगदेश की उस समय की घटना का वर्णन बड़ी उत्तमता से किया गया है, जब दिल्ली के तख्त पर नेकनाम बादशाह गयासुद्दीन बलवन विराजमान था और बंगालेकी बागडोर एक महा अत्याचारी तुगरलखां जैसे निर्दय नव्वाब के हाथ में थी।

इतिहास के जानने वाले जानते होंगे कि सन् १२७६ ई० में बंगदेश में बड़ा भारी उलट फर हुआ था। उन दिनों बंगदेश का महा अत्याचारी नव्वाब तुगरलखां (मगसुद्दीन) था। उसके दमन करने के लिये दिल्ली के सदाशय बादशाह गयासुद्दीन बलवन आए थे। भागलपुर के महाराज महेन्द्रसिंह, उनकी महारानी, प्रधानमंत्री वीरेन्द्रसिंह, गुप्तसचिव यदुनाथसिंह इत्यादि को तुगरल ने एक कुदरती पहाड़ी के अन्दर कैद कर लिया था, जिसका हाल किसी को विदित न था। महेन्द्रसिंह के पुत्र नरेन्द्रसिंह, वीरेन्द्रसिंह के भतीजे विनोदसिंह आदि के ऊपर भी तुगरल ने बड़ा चक्र चलाया था, पर अन्त को यदुनाथसिंह की पुत्री मालती ने, जो यवनवेश में फरहाद नाम धर कर तुगरल के यहां रहती थी, इस रहस्य को खोला और महाराज महेन्द्रसिंह आदि को कैद से छुड़ाया।

इस षड्यन्त्र में यदुनाथसिंह का छोटा भाई रघुनाथसिंह लिप्त था। सो वह आत्मग्लानि से घर छोड़ कर भागा और उसने तुगरल को मार डाला। तुगरल की कन्या शीरी से बादशाह गयासुद्दीन बलवन के पुत्र शाहजादे नासिरुद्दीन मुहम्मद का विवाह हुआ, जो तुगरल के बाद बंगदेश का नव्वाब बनाया गया था। फिर नरेन्द्रसिंह के साथ वीरेन्द्रसिंह की लड़की मल्लिका और यदुनाथसिंह की पुत्री मालती का विवाह हुआ। बस, ऐसी ही अद्भुत और आश्चर्यजनक घटनाओं से यह उपन्यास भरा हुआ है। हिंदीसाहित्य में इसके जोड़ का उपन्यास अभी तक नहीं छपा है। महाराज नरेन्द्रसिंह और कुमारी मल्लिकादेवी का प्रेम बड़े ही अच्छे ढंग से दिखाया गया है। इसमें बड़ी बड़ी भयानक लड़ाइयों का वर्णन है। जब बंगाल में वहां के नव्वाबके कारण घोर संकट उपस्थित हुआ, तब दिल्ली से स्वयं शहंशाह ने आकर वहां शान्ति-स्थापित की और अपने शाहज़ादे को बंगाल का नव्वाब बनाया। आज से कई सौ बर्ष पहिले के ऐतिहासिक रहस्य जानने की इच्छा जिन्हें हो, उन्हें इस उपन्यास को एक बार अवश्य पढ़ना चाहिए।

तारा व क्षत्रकुल—कमलिनी ।

ऐतिहासिक उपन्यास [तीन हिस्सों में]

मूल्य—डेढ़ रुपया ।

तारा उपन्यास पर सहयोगी, सुयोग्य पत्रसम्पादकों की सम्मतियां—

हिन्दी बंगवासी, ता० ६ अप्रैल, सन् १९०३ ई०,—

"उपन्यास" 'मासिक पुस्तक' है। काशीसे (अब वृंदावनसे) निकलती है। इसने अब तीसरे वर्ष में पांव धरा है। हर महीने अपनी बांकी छटा दिखा कर ग्राहकों का मन चुराने में कोर कसर नहीं करती। जब एक उपन्यास पूरा होजाता है, तो एक रंगीन टाइटिल पेज भी आता है। अभी "तारा" नामक उपन्यास खतम हुआ है। उसे पढ़कर चित्त में अनेक तरह के भाव लहर लेने लगते हैं। कभी हँसी आती है और कभी रुलाई, कभी क्रोध उमड़ता है और कभी घृणा, फिर इधर "तारा" की चिट्ठी पढ़ कर चित्त एक बार अनेक प्रकार के ख्यालों में उलझ जाताहै। तारा के साहस प्रेम, तथा स्वामिभक्ति का परिचय चिट्ठी पढ़ने ही से मालूम होगा। इस मनमोहिनी पुस्तक के संपादक श्री किशोरीलाल गोस्वामी हैं।

❀ चपला वा नव्यसमाजचित्र ❀

सचित्र सामाजिक उपन्यास

चार भागों में—मूल्य दो रुपये।

यह उपन्यास बड़ा ही रोचक है। कई रंगों से छपा हुआ चपला का सुन्दर चित्र भी इसमें लगा हुआ है। इस उपन्यास में काशी मुख्य स्थान रक्खा गया है। साथ ही, लखनऊ, गाज़ीपुर आदि का भी जिक्र आया है। इसमें बड़ी बड़ी भयंकर और रोएँ खड़े करने वाली घटनाओं का वर्णन है। उपन्यास हाथ में उठाने पर फिर छोड़ने को जी ही नहीं चाहता है। इसे बनारस का रहस्य ही समझिए। जिसने चपला उपन्यास नहीं पढ़ा, उसने उपन्यास पढ़ने में व्यर्थ समय खोया। चार सौ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य सिर्फ दो रुपए और डाक खर्च आठ आने। आप इसे आज ही मंगाइए।

स्वर्गीयकुसुम वा कुसुमकुमारी ।

*** सचित्र सत्य—घटना-मूलक उपन्यास ***

मूल्य एक रुपया ।

यह उपन्यास सत्यघटना-समन्वितहै । एक सच्ची कहानीको उपन्यास के रूप में लिखा गया है । पुस्तक हाथ में उठा लेने पर फिर समाप्त किए बिना रखने का जी ही नहीं चाहता । इसके पढ़ने में कभी तो आंखों से आंसू बहने लगते हैं, कभी आनन्द की लहरें आती हैं और कभी हंसते हंसते पेट फटने लगता है । उपन्यास बड़ा ही शिक्षाप्रद है, और पुरुष, स्त्री, बालक तथा बालिका सभी के लिये उपयोगी है। हिन्दी के उपन्यासों में तो यह सर्व श्रेष्ठ हुई है, साथ ही अन्य भाषाके उपन्यासों में भी यह अपना सानी नहीं रखता । बड़े आकार के कोई सवा दो सौ पृष्ठ इसमें है और दो बहुत ही बढ़िया रंगीन तसवीरें भी लगी हुई हैं । बाजार में चार चार आने में भी ऐसी तसवीरें न मिलेंगी । कुसुम तथा गुलाब के दोनों चित्र देखने ही योग्य हैं । इतने पर भी सब के सुभीते के लिये मूल्य केवल एक रुपया रक्खा गया है । डांक खर्च छः आने हैं । आप इसे अवश्य मंगाकर पढ़ें ।

लवङ्गलता वा आदर्शबाला उपन्यास ।

मूल्य आठ आने ।

इसे पढ़ने पर पाठकों को बहुत ही आनन्द मिलेगा और वे इस उपन्यास को पढ़कर स्वयं इस बात का अनुभव कर सकेंगे कि " लवंगलता " उपन्यास कितना मनोहर और दिलचस्प है ? यह भी स्त्रियों के पढ़ने योग्य है । ऐतिहासिक उपन्यासों में इसके जोड़ का दूसरा उपन्यास नहीं है ।

इसमें महाराज नरेन्द्रसिंह की बहिन लवंगलता का दुराचारी सिराजुद्दौला के चकाबू में फंसकर बड़ी खूबी के साथ अपना धर्म बचाकर निकल आने का वृत्तांत बड़ी ही उत्तम रीति से लिखा गया है । पढ़ने वालों का पुस्तक उठाकर रखने को जो ही नहीं चाहता है ।